प्रकाशक

काशी-पुस्तक-भण्डार,

चौक, बनारस

पढ़ने योग्य पुस्तकें

मुद्रक

बाबू सूर्यबली सिंह,

खगेश-प्रेस,

बड़ा गणेश, बनारस

कहानी या आख्यायिका आदिकालसे ही साहित्यका एक प्रमुख अंग है। पहलेकी आख्यायिकामें कुतूहल या अध्यात्मकी प्रधानता होती थी और अब वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवनके सत्य, स्वाभाविक चित्रणकी विशेषता रखती है। किन्तु यह समझना भूल है कि कहानी जीवनका यथार्थ चित्र है। कहानीमें अनुभूतियोंकी मात्रा अधिक रहती है, या स्वर्गीय प्रेमचन्दजीके शब्दोंमें यो कहिये कि 'अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावसे अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं। किन्तु कहानीके पात्रोंके सुख-दुःखका जितना प्रभाव हमपर पड़ता है, उतना यथार्थ जीवनका नहीं। कारण यह कि मनुष्य लाघव-गुणसे विशेष आकृष्ट और प्रभावित होता है और तूलसे ऊबता है। यथार्थ जीवन तो कहानियोंका ऐसा झुरमुट है जिसमें अनन्त कहानियाँ एक साथ चलती हैं और उनमेंसे कुछ तो शीघ्र, कुछ विलम्बमें तथा कुछ जीवनके साथ समाप्त होती हैं। इतने अधिक दिनोंतक उनका अध्ययन करते रहना सर्वसाधारणके लिये दुरूह हो जाता है—मनोविज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें दुर्बोध्य भी हो जाती हैं। मनुष्य ही मनुष्यके लिये विकट पहेली है। वह

स्वयं ही अपनी समझमें नहीं आता। यही कारण है कि गल्पमें कल्पनाओं और अनुभूतियोसे काम लेना पड़ता है और तभी वे दुर्बोध्य बातें सुलझकर सर्वसाधारणके लिये भावगम्य होती हैं। इसके अतिरिक्त गल्पके द्वारा कुछ मिनटोंमें ही अन्तिम परिणाम मालूम हो जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि स्थूल प्राणी सूक्ष्म मनके उतने समीप नहीं पहुँच पाता जितना कि कथाके सूक्ष्म चरित्रके। तभी तो वे लोग भी उपन्यास या कहानीके मर्मस्पर्शी स्थलोंपर पहुँचकर रोने और हँसने लगते हैं, जिनपर साधारण सुख-दुःखका कोई असर नही पड़ता—यहाँतक कि श्मशानमे भी जिनकी आँखें सजल नही होती।

हम यह माननेके लिये तैयार नही कि गल्प साहित्यका सृजन करना हमने पाश्चात्य देशोंसे सीखा है। उपनिषद्, सांख्य, नन्दीसूत्र, महाभारत, पंचतंत्र तथा जातकोंमें आध्यात्मिक आदि रहस्योंको समझानेके लिए कहानियोंका आश्रय लिया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे देशमें हजारों वर्ष पहले भी आख्यायिकाओंका विशेष प्रचार था; यही कारण है कि आज भी प्रत्येक घरमे वृद्धाएँ वालक-वालिकाओंको मनोरंजक कहानियाँ सुनाया करती हैं। हाँ, इतना हम अवश्य स्वीकार करते हैं कि उपन्यासोंहीकी तरह आख्यायिकाकी भी कला और उसका वर्तमान विकसित पश्चिमकी ही देन है। किन्तु सौ वरस पहले यूरोप भी इस कलासे अनभिज्ञ था। इतने थोड़े समयमे ही छोटी कहानियोने साहित्यके प्रायः सब अंगोंपर विजय प्राप्त कर लिया है। इसका श्रेय वालज़क, मोपाँसा, ऐंटन चेखाव, तुर्गनेव, टालस्टाय, मैक्सिम गोर्की, एमिलजोला, डोस्टोवोस्की आदि महान कलाकारोंको है। उक्त

कलाकारोंने जीवनका यथार्थ चित्र उपस्थित कर अतुलनीय यश प्राप्त किया है। इधर कुछ दिनोंसे पश्चिम प्रगति करता आ रहा है और हमारा देश स्थिर हो गया था। इसीसे कहानी-कलाकी उत्पत्ति पहले पश्चिममे ही हुई। परिणाम यह हुआ कि शैली बिलकुल बदल गयी। हमारे यहांके इस साहित्यमें पहले बहु-रूपता, विचित्रता, रोमांस था, पर जीवनकी जटिल समस्याएँ, मनोविज्ञानका रहस्य, अनुभूतियोंकी प्रचुरता नही थी और न पात्रोका ऐसा चित्रण ही था कि हम उनके निकट पहुँचकर उन्हे अपना सकते। आज हमारे कहानी-साहित्यमे ये बातें पश्चिमके ही प्रभावसे आ पायी है।

हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह अल्प-से-अल्प समय और शब्दोंमें कही जाय। साथ ही उसमें कुछ सार भी हो। कहानीमे उपदेशकी आवश्यकता तो नही रहती, पर विचारोको उत्तेजित करनेके लिये कुछ-न-कुछकी जरूरत रहती है। कुछ कहा-नियाँ तो घटना-प्रधान होती है और कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानीका स्थान ऊँचा है। किन्तु उसका विस्तार अत्यन्त सीमित और मर्यादित होना चाहिए। उच्चकोटिकी कहानी वही समझी जाती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्यपर हो। कहानीका उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्यको चित्रित करना नही है बल्कि उसके चरित्रका एक अंग दिखानामात्र है; चरित्रोंके मनो-भावोकी व्याख्या करना या टीका-टिप्पणी करना नही है बल्कि उसकी ओर संकेत करनामात्र है।

हिन्दीके कहानी-साहित्यने बहुत थोड़े समयमे पर्याप्त उन्नति की है। उसकी गति बहुत तीव्र, रूप अत्यन्त सूक्ष्म और रचना-

शैली अत्यन्त परिमार्जित होती जा रही है। अब उसमें बँगला-की छाप दिखायी न पड़कर मौलिकता दृष्टिगोचर होने लगी है। प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें पाठकगण हिन्दी कहानियोंका निखरा हुआ रूप देखेंगे। इसमें अधिकांश कहानियाँ कलाकी दृष्टिसे उच्चकोटि-की हैं और कुछ साधारण भी। किन्तु प्रायः सभी कहानियाँ सुरुचिपूर्ण और मनोवैज्ञानिक सत्यके आधारपर हैं, इसलिये उपादेय हैं। आशा है कि सहृदय पाठक-वृन्द इस पुस्तकको उच्च कोटिके संग्रहोंकी पंक्तिमें ही रखकर सन्तुष्ट होंगे।

बड़ा गणेश, काशी
ता० २२-१०-४० } देवनारायण द्विवेदी

विषय सूची

मैंने इस संग्रहमें अपनी रुचिके अनुकूल अच्छी कहानियोंको चुनकर रखनेका प्रयत्न किया है। पहले मैंने इस संग्रहका नाम 'कहानी-कुञ्ज' रक्खा था और तदनुसार ही प्रारम्भके कुछ फार्मों-पर यही नाम छप भी गया था किन्तु पीछे मुझे मालूम हुआ कि इस नामकी पुस्तक निकल चुकी है, इसलिये इसका नाम बदलकर 'कहानी-पुञ्ज' रख देना ही उचित समझा। विश्वास है कि पाठकगण इसे पसन्द करेंगे। जिन महानुभावोंकी रचनासे ये पुस्तक अलंकृत हुई है, उनका और जिन पत्र-पत्रिकाओंमें यह प्रकाशित हुई थीं उनका भी मैं हृदयसे आभारी हूँ।

सूर्य्यबली सिंह,

२३ अक्टूबर १९४०

काशी

[लेखक—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

एक था राजा।—

बस तब इससे ज्यादा जाननेकी कोई आवश्यकता ही न थी। कहाँका राजा, क्या नाम, ये सब प्रश्न करके कहानीके प्रवाहको न रोकता था। राजाका नाम शिलादित्य था या शालिवाहन; काशी, काञ्चि, कन्नौज,

कोशल, अंग, बंग—इनमेंसे ठीक कहाँ उसका राज्य था, ये सब इतिहास भूगोलके तर्क हमारे लिए बहुत ही तुच्छ थे,—असलमें जिस बातको सुनते ही हृदय मन पुलकित हो उठता था, और सम्पूर्ण हृदय क्षण-भरमें बिजलीकी चालसे चुम्बककी तरह आकर्षित हो जाता था, वह था—'एक था राजा।'

आजकलके पाठक मानो कमर बाँधकर बैठ जाते हैं। शुरूमें ही ताड़ जाते हैं कि लेखक झूठी बात कह रहा है। इसलिए अत्यन्त सयानेकी तरह मुँह बनाकर पूछते हैं—"लेखक महाशय, तुम जो कह रहे हो, एक था राजा, अच्छा बताओ तो सही कौन था वह राजा!"

लेखक भी सयाने हो गये हैं, वे भी पुरातत्त्वके प्रचंड पंडितकी तरह मुख-मंडलको चौगुना मंडलाकार बनाकर कहते हैं—"एक था राजा, उसका नाम था अजातशत्रु!"

पाठस आँख मिचकाकर पूछते हैं—"अजातशत्रु? अच्छा कौनसा अजातशत्रु बतलाना जरा?"

लेखक वैसा ही मुँह बनाये अविचलित भावसे कहता चला जाता है—"अजातशत्रु हुए हैं तीन। एक ईशासे तीन हजार वर्ष पहले जन्म ग्रहण करके दो वर्ष आठ महीनेकी अवस्थामें मर गये। खेदका विषय है कि उनके जीवनका विस्तृत विवरण किसी भी ग्रंथमें नहीं पाया जाता।" आखिरको दूसरे अजातशत्रुके विषयमे दस ऐतिहासिकोंके दस विभिन्न मतोंकी समालोचना समाप्त करके जब ग्रन्थके नायक तीसरे अजातशत्रुतक पहुँचे, तब पाठक बोल उठे—"अरे बाप रे, कैसा पांडित्य है! एक कहानी सुननेमे कितनी शिक्षा मिली! इस आदमीपर अब

अविश्वास नही किया जा सकता ! अच्छा, लेखक महाशय, उसके वाद फिर क्या हुआ ?"

हाय रे हाय, आदमी ठगाना ही चाहता है, ठगाया जाना ही अच्छा समझता है, और साथ ही कही कोई वेवकूफ न समझ ले, इस वातका भी डर उसे सोलह-आना रहता है; इसलिए जी-जानसे वह सयाना वननेकी कोशिश करता है। उसका नतीजा यह होता है कि वही अन्तमें ठगाया जाता है, किन्तु वहुत आडम्वरके साथ।

अंग्रेजीमे एक कहावत है—"प्रश्न मत पूछो, नहीं तो झूठा जवाव सुनना पड़ेगा।" वालक इस वातको समझता है, वह कोई प्रश्न नहीं करता। इसीलिए प्राचीन कहानियोंका सुन्दर झूठ शिशुके समान नग्न है, सत्यके समान सरल है, झरते हुए ताजे झरनेकी तरह स्वच्छ है और आजकलकी सुचतुर कहानियाँ नकावपोश झूठ ! कहीं भी यदि तिलमात्र भी छिद्र रह जाय तो चट भीतरसे भंडाफोड़ हो जाता है; पाठक विमुख हो जाते हैं, लेखकको भागे राह नही मिलती।

वचपनमे हमलोग दरअसल रसज्ञ थे, इसीलिए जव कहानी सुनने वैठते थे, तो ज्ञान प्राप्त करनेका हमलोगोमे रंच-मात्र भी आग्रह न रहता था, और अशिक्षित सरल-हृदय ठीक समझ लेता था कि असली वात उसमे कौनसी है। और आजकल तो इतनी फालतू वातें वकनी पड़ती हैं, इतनी अनावश्यक वातोंकी जरूरत पड़ती है कि जिसका ठिकाना नही। परन्तु अन्तमें उसी असली वातपर ही आकर पहुँचते हैं—'एक था राजा।'

मुझे खूव याद है एक दिन शामको आँधी-मेह हो रहा था।

कलकत्ता शहर पानीसे बहा जा रहा है। गलियोंमें घुटनोंतक पानी इकट्ठा हो गया है। मनमें बिलकुल आशा थी कि आज मास्टर न आयेगा, परन्तु फिर भी उनके आनेके निश्चित समय-तक भयभीत चित्तसे सड़ककी तरफ देखता हुआ बरामदेमें चौकी डालकर बैठा रहा। अगर मेह जरा थमता-सा मालूम देता तो एकाग्र-चित्तसे प्रार्थना करता, हे देवता, और ज़रा थोड़ी देरतक—किसी तरह रातके साढ़े-सातका वक्त पार कर दे। तब मालूम होता कि सिर्फ एक शामको नगरके एक कोनेमें रहनेवाले व्याकुल बालककी मास्टरके कराल हाथोंसे रक्षा करनेके सिवा संसारमें मेहकी और कोई आवश्यकता ही नही। प्राचीन-कालमें कोई एक निर्वासित यक्ष भी तो यही समझता था कि आषाढ़में मेघको और कोई काम नहीं है, इसलिए रामगिरिके शिखरपर बैठे हुए एकमात्र विरहीकी दुःखवार्ता विश्व पार होकर अलकाके सौध-वातायनमें किसी एक विरहिणीके पास ले जाना उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है, ख़ासकर मार्ग जब कि ऐसा सुरम्य है और उसकी हृदय-वेदना इतनी दुःसह। बालककी प्रार्थनाके अनुसार न सही, धूम-ज्योति सलिल-मरुतके किसी विशेष नियमानुसार वर्षा बन्द न हुई। परन्तु हाय मास्टर भी बन्द न हुआ। गलीकी मोड़पर ठीक समयपर एक परिचित छतरी दीखी, सारी आशाकी भाप मानों एक क्षणमें फटकर बाहर निकल गयी—मेरा मन मानों बीचहीमें बिला गया। पर-पीड़न पापका यदि कोई यथोपयुक्त दंड हो, तो दूसरे जन्ममे अवश्य ही मैं मास्टर होकर और मास्टर साहब छात्र होकर जन्मेंगे। इसके विरुद्ध सिर्फ एक ही आपत्ति है, वह यह कि

मुझे मास्टर साहबका मास्टर होनेके लिए बहुत ही असमयमें इस संसारसे कूच करना पड़ेगा, इसलिए मैं हृदयसे उन्हें क्षमा करता हूँ।

छतरी देखते ही दौड़कर अन्तःपुरमे घुस गया। मा तब नानीके साथ आमने-सामने बैठी हुई दिआके उजेलेमें ताश खेल रही थी। चटसे जाकर एक तरफ सो गया। माने पूछा—"क्या हुआ?"—मैंने हँड़िया-सा मुँह बनाकर कहा—"मेरी तबीयत खराब है, आज मैं मास्टरके पास पढ़ने न जाऊँगा।"

आशा है, अधेड़ उमरके कोई साहब मेरी इस कहानीको न पढ़ेंगे, और न इसे स्कूलकी किसी संग्रह-पुस्तकमें ही उद्धृत किया जायगा। कारण मैंने जो काम किया था वह नीति-विरुद्ध था, और उसके लिए मुझे कोई सजा भी नहीं मिली। बल्कि मेरा तो अभिप्राय ही सिद्ध हुआ है।

माने नौकरसे कह दिया—"तो आज रहने दे, मास्टरसे कह दे, चले जायँ।"

परन्तु मा जिस तरह बे फिक्र होकर ताश खेल रही थी, उससे तो साफ मालूम हुआ कि माता अपने पुत्रकी बीमारीके उत्कट लक्षणोंको देख-भालकर मन-ही-मन हँसी। मैं भी बड़े आनन्दसे तकियेमें मुँह छिपाकर खूब हँसा—हम दोनोंका मन दोनोंसे छिपा न रहा।

परन्तु यह बात सभी जानते हैं कि इस प्रकारकी बीमारीको ज्यादा देरतक ठहराये रखना रोगीके लिए बहुत ही दुःसाध्य है। मिनटें भी न बीतने पायीं कि नानीको पकड़ बैठा—"नानी एक कहानी कहो न!" दो-चार बार तो कोई उत्तर

ही न मिला। माने कहा—ठहर जा बेटा खेल खतम हो जाने दे।"

मैंने कहा—"नहीं, मा, खेल तुम कल खतम करना, आज नानीसे कहानी कहलवाओ।"

माने पत्ते फेंककर कहा—"जाओ चाची, उसके साथ कौन मगज़पच्ची करे।"

शायद मनमें उन्होंने सोचा होगा कि 'मेरे तो कल मास्टर नहीं आयेंगे—मैं तो कल भी खेल सकती हूँ।'

मैं नानीका हाथ पकड़कर सीधा उन्हें बिस्तरपर मशहरीके भीतर ले गया। पहले कुछ देरतक तकियेसे चिपटकर, पैर पटककर लोट लगाकर मनकी खुशीको रोकता रहा—फिर बोला—"नानी, कहानी कहो न।"

उस समय भी बाहर झम-झम मेह बरस रहा था—नानीने मृदु-स्वरमें कहना प्रारम्भ किया—

एक था राजा।—

उसके थी एक रानी।

ओफ्, जान बच गयी। प्यारी और कुप्यारी रानीकी बात सुनते ही छाती धड़क उठती—जानता था कि कुप्यारी अभागी-पर आफत आनेमें देर नहीं। पहलेसे ही मनपर एक बड़ी-भारी उत्कंठा सवार हो जाती।

जब सुना कि अब कोई चिन्ताकी बात नहीं, सिर्फ राजाके कोई पुत्र न होनेसे राजा व्याकुल हो रहे हैं और देवतासे प्रार्थना करके कठिन तपस्या करनेके लिए वनको जानेके लिए तैयार हैं, तब कहीं जानमें जान आयी। पुत्रका न होना कोई दुःखकी

बात है, यह मैं नहीं समझता था; मैं तो सिर्फ इतना ही जानता था कि अगर कभी किसी बातके लिए वनमें जानेकी जरूरत आ सकती है, तो वह सिर्फ मास्टरके हाथसे छुटकारा पानेके लिए।

रानी और छोटी लड़कीको महलमे छोड़कर राजा तपस्या करने चले गये। एक वर्ष, दो-वर्ष होते-होते बारह वर्ष बीत गये, फिर भी राजा न लौटे।

इधर राजपुत्री सोलह वर्षकी युवती हो गयी। व्याहकी उम्र पार हो गयी, परन्तु राजा न लौटे।

लड़कीके मुँहकी तरफ देख-देखकर रानीका खाना-पीना भी छूट गया। "हाय, मेरी ऐसी सोनेकी लड़की क्या सदा कुँआरी ही रहेगी? हाय, मेरी तकदीरमें क्या यही लिखा था!"

अन्तमें रानीने राजाको बड़े अनुनय-विनयके साथ कहला भेजा—"मुझे और कुछ नही चाहिए, तुम एक दिन मेरे घर आकर सिर्फ भोजन कर जाओ।"

राजाने कहा—"अच्छा।"

रानीने उस दिन बड़े जतनसे चौसठ तरहके व्यंजन अपने हाथसे बनाये, और उन्हे सोनेके थाल और चाँदीकी कटोरियोंमें रखकर चन्दनकाष्ठका पट्टा बिछा दिया। राजकुमारी चामर हाथमें लिये खड़ी हो गयी।

राजा आज बारह वर्ष बाद अन्तःपुरमें आकर भोजन करने बैठे। राजकुमारी अपने रूपका प्रकाश फैलाती हुई चामर ढारने लगी।

राजा लड़कीके मुँहकी ओर देखते जायँ और खाना भूल

जायँ। अन्तमें रानीके मुँहकी ओर देखकर पूछा—"क्यों रानी ऐसी सोनेकी प्रतिमा लक्ष्मी-सी यह लड़की कौन है? यह किनकी लड़की है?"

रानीने माथेपर हाथ दे मारा, बोलीं—"हाय री मेरी तक़दीर! इसे पहचान नहीं सके? यह तो तुम्हारी ही लड़की है।"

राजाने बड़े आश्चर्यके साथ कहा—"मेरी वह ज़रासी लड़की! अब इतनी बड़ी हो गयी है?"

रानीने एक लम्बी साँस लेकर कहा—"सो होगी नहीं। कहते क्या हो, तुम्हें गये आज बारह वर्ष हो गये।"

राजाने पूछा—"इसका व्याह नही किया?"

रानीने कहा—"तुम थे नहीं, उसका व्याह कौन करता? मैं क्या खुद जाती लड़का ढूँढ़ने!"

सुनते ही राजाने सहसा बड़ी घबराहटके साथ कहा—"ठहरो, मैं कल सबेरे ही उठकर राजद्वारपर जिसका मुँह देखूँगा, उसीके साथ इसका व्याह कर दूँगा।"

राजकुमारी चामर ढारने लगी। उसके हाथके कड़े और चूड़ियोंमें ठुन-ठुन आवाज होने लगी। राजाका भोजन हो गया।

दूसरे दिन सबेरे ही सोतेसे उठकर राजाने बाहर जाकर देखा, एक ब्राह्मणका लड़का राज-महलके बाहर जंगलमें सूखी लकड़ियाँ बीन रहा है। उसकी उमर सात-आठ बरसकी होगी।

राजाने कहा—"इसीके साथ मैं अपनी पुत्रीका व्याह कर दूँगा।" राजाका हुक्म, भला कौन टाल सकता था? उसी समय लड़केको पकड़कर उसके साथ राजकुमारीकी माला बदलवा दी गयी।

इस समय मैं नानीसे बिलकुल सट गया था, मैंने अत्यन्त उत्सुकताके साथ पूछा—"फिर ?" तब क्या अपनेको उस सात-आठ बरसके सौभाग्यवान् लकड़ी बीननेवाले ब्राह्मणके लड़केका स्थानापन्न बनानेकी ज़रा भी इच्छा नहीं हुई थी ! जब उस रातको झम-झम मेह बरस रहा था, घरके एक कोनेमें दिआ टिम-टिमा रहा था, और धीमे स्वरसे नानी उस मशहरीके भीतर कहानी कह रही थी, तब क्या बालक-हृदयके विश्वास-परायण रहस्यमय अनाविष्कृत एक छोटेसे कोनेमें ऐसी एक अत्यन्त सम्भवनीय तसवीर नहीं जाग उठी थी कि मैं भी एक दिन सबेरे किसी एक राजाके देशमें राजाके द्वारके सामने लकड़ी बीन रहा हूँ, सहसा एक सोनेकी प्रतिमा लक्ष्मीके समान सुन्दर राजकुमारी-के साथ मेरी माला बदल दी गयी; माथेपर उसके माँग है, कानों-में लटकन है, गलेमे चन्द्रहार है, हाथोंमें उसके कंकण हैं, कमरमें करधनी है और मेहदीसे रंगे हुए पैरोंमें नूपुर छमछम करके बज रहे हैं।

परन्तु मेरी वह नानी यदि लेखकका जन्म लेकर आजकलके सयाने पाठकोंके सामने यह कहानी कहतीं, तो इस बीचमें उन्हें कितना हिसाब देना पड़ता ? पहले तो, राजा बारह वर्षतक वनमें ही बैठे रहे और उतने दिनोंतक राजकुमारीका व्याह ही नहीं हुआ, एक स्वरसे सभी कहते कि यह असम्भव है। पहले तो, ऐसा कभी होता नहीं, दूसरे, सभी आशङ्का करते कि ब्राह्मण-के लड़केके साथ क्षत्रिय कन्याका विवाह कराकर लेखक अवश्य ही लोगोंको धोखेमे डालकर समाज-विरुद्ध मतका प्रचार कर रहा है। परन्तु पाठक ऐसे भोले नहीं हैं, और न लेखकोंके

नाती ही कि सब बात चुपचाप सुनते जायँगे। वे पत्रोंमें समालोचना करेंगे। अतएव एकाग्र मनसे प्रार्थना करता हूँ कि नानी फिरसे नानी होकर ही पैदा होवें, अभागे नातीकी तरह ग्रह-दोषसे कहीं लेखक न बनना पड़े।

मैंने एकदम पुलकित होकर काँपते हुए हृदयसे पूछा—फिर ?"

नानी कहने लगी—फिर राजकुमारी उदास होकर उस छोटेसे पतिको लेकर चली गयी।

बहुत दूर किसी दूसरे देशमें जाकर राजकुमारीने एक बड़ा-भारी महल बनवाया और उसमें उस ब्राह्मणके लड़केको—अपने उस छोटेसे पतिको—बड़े जतनसे पाल-पोषकर बड़ा करने लगी।

—मैंने जरा इधर-उधर हिल-डुलकर बगलके तकियेको और भी ज़रा ज़ोरसे दाबकर कहा—"फिर ?"

नानीने कहा—फिर वह लड़का पुस्तक लेकर पाठशाला जाने लगा।

इस तरह पंडितजीसे अनेक विद्याएँ सीखता हुआ लड़का धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसके साथके लड़के उससे पूछने लगे—"उस सतमँजिले महलमें तुम्हारे साथ जो रहती है, वह लड़की तुम्हारी कौन लगती है ?"

अब तो वह बड़े चक्करमें पड़ गया, किसी भी तरह उससे ठीक जवाब देते न बना कि वह लड़की उसकी कौन होती है ? ज़रा-ज़रा याद आती है, एक दिन सबेरे राजाके महलके सामने वह सूखी लकड़ी बीनने गया था—परन्तु उस दिन न-जानें किस गड़बड़ीमें पड़कर वह लकड़ी न बीन सका। वह बहुत दिनकी

बात है, उसे कुछ याद थोड़े ही है ? इस तरह चार-पाँच वर्ष बीत गये। साथके लड़के रोज ही उससे पूछते—"अच्छा, जो उस सतमँजिले महलमे बहुत ही सुन्दर एक लड़की रहती है, वह तुम्हारी कौन लगती है ?"

ब्राह्मणने एक दिन पाठशालासे लौटकर बड़े उदास मनसे राजकुमारीसे कहा—"मुझसे पाठशालाके सब लड़के रोज-रोज़ पूछा करते हैं—'वह जो सत-मॅंज़िले महलमे एक परम सुन्दरी लड़की रहती है, वह तुम्हारी कौन लगती है ?' मुझसे इसका कोई जबाब देते नहीं बनता। तुम मेरी कौन होती हो, बताओ ?"

राजकुमारीने कहा—"आज रहने दो, यह बात और किसी दिन बताऊँगी।"

ब्राह्मणका लड़का प्रतिदिन पाठशालासे आकर पूछता—तुम मेरी कौन लगती हो ?"

राजकुमारी प्रतिदिन उत्तर देती—आज नहीं, फिर कभी बताऊँगी।"

इस तरह और भी चार-पाँच वर्ष बीत गये। आखिर एक दिन ब्राह्मणने बहुत गुस्सेमें आकर कहा—"आज अगर तुम न बताओगी, तुम मेरी कौन लगती हो, तो मैं तुम्हारे इस महलको छोड़कर और कहीं चला जाऊँगा।"

तब राजकुमारीने कहा—"अच्छा कल जरूर बतला दूँगी।"

दूसरे दिन ब्राह्मणके लड़केने पाठशालासे वापस आते ही राजकुमारीसे कहा—"आज कहनेको कहा था, बताओ अब ?"

राजकुमारीने कहा—"आज रातको भोजन करके जब तुम सोने लगोगे तब कहूँगी।"

ब्राह्मणने कहा—"अच्छा।" कहकर सूर्यास्तकी प्रतीक्षामें वह पहर गिनने लगा।

इधर राजकुमारीने सोनेके पलँगपर सफेद फूलोंकी सेज बिछायी, घरमें सोनेके दियेमे सुगंधित तेल डालकर वत्ती जलायी और जूड़ा बाँधकर नीलाम्बरी साड़ी पहनकर खूब शृंगार करके बैठी बैठी पहर गिनने लगी—कव रात हो।

रातको उसका पति किसी तरह भोजन समाप्त करके शयन-गृहमें सोनेके पलँगपर—फूलोंकी सेजपर—जाकर लेट रहा। सोचने लगा, आज मालूम होगा—इस महलमें जो सुन्दरी रहती है, वह मेरी कौन होती है।

राजकुमारीने अपने पतिके थालका प्रसाद खाकर धीरे-धीरे शयनगृहमें प्रवेश किया। 'आज वहुत दिन वाद प्रकट-रूपसे कहना होगा—इस सत-मॅजिले महलकी एकमात्र अधीश्वरी—मैं तुम्हारी कौन लगती हूँ।'

कहनेके लिए ज्यो ही उसने पलॅगपर पैर रक्खा, देखा तो फूलोके अन्दर सर्प था उसने उसके पतिको डस लिया है। पतिका मृत शरीर मलिन होकर सोनेके पलॅगपर—फूलोंकी सेजपर पड़ा हुआ है।

मानो मेरे भी हृदयका स्पन्दन सहसा बन्द हो गया। मैंने रुँधे हुए स्वरमें फीके मुँहसे पूछा—

"फिर क्या हुआ?"

नानी कहने लगीं—फिर···। लेकिन उस वातकी अव क्या जरूरत है? वह तो और भी असम्भव है। कहानीका प्रधान नायक सर्पके काटनेसे मारा गया, फिर भी "फिर?" बालक तब

जानता न था कि मृत्युके वाद भी एक 'फिर' हो सकता है, परन्तु उस 'फिर' का उत्तर कोई नानीकी नानी भी नही दे सकती। विश्वासके बलपर सावित्रीने मृत्युका भी पीछा किया था। बालकको भी प्रवल विश्वास है। इसलिए वह मृत्युका अंचल पकड़कर उसे लौटाना चाहता है, उसकी समझमें यह बात किसी भी तरह नही आती कि उसकी यह मास्टर-हीन सन्ध्या समयकी इतनी साधकी कहानी सहसा एक सर्पके काटनेसे मारी गयी। इसलिए नानीको उस महापरिणामके चिररुद्ध गृहसे कहानीको फिरसे वापस लाना पड़ता है। परन्तु उनका यह काम इतनी स्वाभिकतासे—इतनी सरलतासे—शायद सिर्फ एक केलेके छिलकेपर वहाकर, दो-चार मन्त्र पढ़कर—होता है कि उस झम-झम वर्षाकी रातमें टिमटिमाते हुए दीपकमे वालकके मनमें मृत्युकी मूर्ति अत्यन्य कठोर मालूम होने लगती है; फिर उसे वह एक रात्रिकी सुख-निद्रासे ज्यादा नहीं मालूम होती। कहानी जव खतम हो जाती है, तो आरामसे थकी हुई दोनों आँखें अपने आप मुँद जाती हैं, तव भी तो वालकके छोटेसे प्राणको किसी स्निग्ध निस्तब्ध निस्तरंग स्रोतमें सुषुप्तिकी नावमें विठाकर वहा दिया जाता है, उसके वाद सवेरेके वक्त न-जाने कौन दो-एक माया-मन्त्र पढ़कर उसे इस संसारके अन्दर जाग्रत कर देता है।

परन्तु जिसे विश्वास नही है, जो डरपोक है, इस सौन्दर्य आस्वादनके लिए भी जो एक इञ्च असम्भवको लंघन नही कर सकता, उसके लिए किसीमे कहीं भी 'फिर' नही है, सव कुछ सहसा असमयमे असमाप्तिमे समाप्त हो गया है। वचपनमे

सात समुन्दर पार होकर—मृत्युको भी लंघन करके—कहानीका जहाँ यथार्थमें विराम होता था, वहाँ स्नेहमय मीठे स्वरमें सुनते थे,—

"इत्ती कहानी
बोदा रानी।
बोद बुदकड़,
चूल्हे पै लकड़।
चूल्हे ऊपर चकटी
लल्लूकी सास नकटी।" ❀

❀ पाठभेदः—"इतनी कहानी,
पोता रानी,
चूल्हेकी दौरानी।
काम-काजको थर-थर काँपै,
खानेको मस्तानी।"

पाठभेद :—"कानी-सी मन्नानी डोलै,
जैसे बरधा घानीकौ।
दार करी अरौनी,
बुरे-भले दो जैसन आते,
दै दियौ छींटा पानीकौ,
देखौ कर्तब कानी कौ।"

मगर अब उमर बहुत हो चुकी है, अब कहानीके ठीक बीच-में सहसा ठिठककर एक निष्ठुर कठोर कंठ सुनायी देता है,—

बस इतनी ही कहानी !
लेखककी नानी ।
लेख लिखक्कड़
माथे पै लक्कड़
माथे ऊपर चकटी
लेखककी.........

बस अब नहीं कहते; न-जाने कौन किसपर घटा दे !

अनुवादक—धन्यकुमार जैन

अवगुंठन

श्रीसुमित्रानन्द पन्त

अबके एम० ए० की परीक्षा समाप्तकर जब रामकुमार घर आया, तो स्नेह-प्राण माका एकान्त अनुरोध न टाल सका। अभी दो साल पीछे, अचानक हृद्रोगसे पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण सन्तोष-मूर्ति माके मर्ममें जो चिरस्थायी घाव पड़ गया था, उसकी पीड़ाके चिह्नोंको थोड़ा-बहुत मिटानेका एकमात्र उपाय यही था कि घरमें एक नया चाँदका टुकड़ा आकर नयी चाँदनी फैलाये। कुमारके पिता अपनी इकलौती सन्तानके लिए प्रचुर धन-सम्पत्ति छोड़ गये थे। केवल एक नवीन वयस, नवीन-जीवन अपने नवीन उल्लास-उमंग-के चंचल, मुखर पद-न्याससे उस जड़ सम्पत्तिको सजीव कर दे, उस विशाल नीरव भवनमें स्वर भर दे—इसीकी कमी थी।

रामकुमार शिक्षा-प्राप्त युवक था। जात-पाँत, कुल-वंशका आडम्बर और विवाह सम्बन्धी पुश्तैनी रीति-रस्म उसे रत्तीभर पसन्द न थे। परदेकी प्रथासे तो उसे एकदम घृणा थी। वह

उसे आदिम-युगकी आँखोंपर पड़े हुए अन्धकारका चिह्न कहता था। जैसा कि प्रत्येक शिक्षित युवक सोचता है, रामकुमार भी अविद्याके अँधेरेमें पले हुए इन अन्ध रीति-रिवाजोंके डैने तोड़-मरोड़कर समाजके जीर्ण वृक्षकी ठूँठी टहनियोंसे उनकी उल्लूक बस्तियोंको जड़से उखाड़ फेंक देना अपना कर्तव्य समझता था, पर समयपर वैसा कुछ भी न हो सका। उन्हीं रीति-रस्मोंकी प्रसूति, उन्हीं अन्ध-संस्कारोंमें पली हुई, किन्तु उनसे कहीं अधिक सजीव संस्कृत और शान्तमूर्ति माके हाथोंसे वे पुरानी रीति-नीतियाँ एकदम उतनी भद्दी नहीं लगीं। मानो उनकी कुरूपताके ऊपर जैसे अपना चिर-परिचित अंचल डाल दिया। एक दिन बहुत बड़ी धूमधाम, सजधज और बन्धु-बान्धवोंके उत्सव कोलाहलके बीच अपनी लज्जाकी लपेटनोंमें खोई हुईसी नवबधूने चुपकेसे उन्हीं पुराने रीति-रस्मोंके झरोखेसे राजकुमारके पिता शिवकुमारकी विशाल अट्टालिकामें प्रवेश कर उसे अपने नवीन सुहागकी मौन मधुरिमासे भर दिया। रामकुमारने देखा, माके स्नेह और यत्नोंसे, आज दीर्घकालके बाद, बिलकुल ही नये ढंगसे सजा हुआ घरके अन्तःपुरका विशाल कमरा जैसे अपना वास्तविक केन्द्र खो बैठा है, उसकी केन्द्र-वाहिनी ाड़ियाँ आज अपनेको सबसे अलग किये हुए एक कोनेकी ओर वाहित हो रही हैं। कमरेकी सभी वस्तुएँ, सभी सजावटका ामान, छत, फर्श और दीवारेंतक उस कोनेसे सटे हुए एक म्बेसे घूँघटके भीतर झाँकनेके प्रयत्नमें संलग्न, किन्तु असफल-ाय दीख रही हैं।

बरसातके बादलोंमें छिपे रहनेके कारण चाँदके दर्शन

सहजमे नहीं होते; किन्तु यह कल्पना कि वह कहीं, इन्हीं बादलोंके बीचमें है, और यह उत्कण्ठा कि न-जाने कब उनके विरल अन्तरालसे उसकी झलक मिल जाय, उसे और भी मोहक बनाये रहती है। रामकुमारको भी जान पड़ा कि छुईमुईके पौधेकी तरह, अस्तित्व-हीनप्राय, केवल अनुमान-मात्र उसकी बहू, अपने संकोचमें अत्यधिक सिमट जानेके कारण और भी व्यक्त एवं सर्वव्याप्त हो उठी है। इस अपनेको छिपानेकी कलाने मानो उसका सौन्दर्य कहीं अधिक प्रस्फुटित कर दिया है। समस्त घरमें, बाहर भीतर, ऊपर नीचे, न-जाने किस माया-बलसे उस संकोचमें सिमटी हुई, अपने ही भीतर छिप जानेवाली बहूके उपस्थितिकी बेलि पुष्पित-पल्लवित होकर फैल गयी है। सबको उसके आगमनकी सूचना मिल गयी है, और सभी ओर नयी सजधजके चिह्न दिखायी देने लगे हैं।

देशकालकी आलोचना और जन-रवसे दूर, अन्तःपुरकी चहारदीवारीके अन्दर नवीन अनुरागकी उत्सुक आँखोंसे देखनेमे, भारतीय नारी और समस्त सभ्य-संसारके बीच छायाकी तरह पड़े हुए और बाहरके प्रकाशको छिपानेवाले उस घूँघटका सौन्दर्य रामकुमारको किसी प्रकार भी अवहेला करने योग्य नहीं जान पड़ा। घूँघटके मुखमे—उसमें भी नववधूके—उन्हें बड़ी ही मधुर कविता जान पड़ने लगी। कलाको छिपाना ही—रहस्यको रहस्य बनाये रखना ही—तो कला है! संसारमे जहाँ कहीं सौन्दर्य है, वह उन्हे आवरणके ही अन्दर छिपा हुआ दिखायी देने लगा।—वही तो उसके लिए उचित स्थान है। केवल तड़के बहुत ही तड़के, जब कि संसारकी आँखोंमे कोमल झुटपुटेका

परदा पड़ा रहता है, छिपते हुए चाँदकी छायामें, कली अपने हृदयका गूढ़ रहस्य खोलती है। उषाके कपोलोंमें, चुपकेसे, लाजकी प्रथम लालिमा दौड़कर छिप जाती है!—दिनके पूर्ण खुले प्रकाशमें सौन्दर्य?

[२]

राजकुमारकी मा पुरखिनका कर्तव्य जानती थी। बेटेके, एक पढ़े-लिखे लड़केकी तरह, वारवार स्पष्ट कह देनेपर भी माने अपने मनमें शिक्षित वधूसे ऊँचा स्थान सुन्दरी वधूको ही दिया। वह पढ़ी-लिखी न हो, तो फिर भी पढ़ायी जा सकती है, अंगोंमें दुबारा लावण्य तो भरा नहीं जा सकता। मनश्चक्षुओंको कुछ भी पसन्द हो, चर्म-चक्षुओंको जो अच्छा नहीं लगता, उसका सुन्दर लगना, और नयी उम्रमें, असम्भव न होनेपर भी कठिन ही है। कल्याणी इस वारवार परखी हुई बातको कैसे भुला देती? शिक्षाका सौन्दर्य देखनेके लिये समय चाहिए, धीरज चाहिए,—शरीरकी सुन्दरता तो आते ही बोल उठती है—देखो, मैं हूँ!

मूक-सौन्दर्य और स्वरित-सौन्दर्यके अधिक जाँच-पड़ताल करनेकी आवश्यकता कल्याणीको नहीं थी। एक तो स्त्री, मा, उसपर प्रौढ़, अनुभव-प्राप्त। जो एक सर्वसम्मत, सर्वनिर्दिष्ट संसार है, उसकी वह कैसे उपेक्षा करती? नब्बे प्रतिशत पुरुष और निन्यानवे सैकड़ा स्त्रियाँ संसारका एक ही अर्थ समझती हैं। उनकी धारणा ही नहीं, पक्का विश्वास है कि चिरकालसे इस संसार शब्दको मनुष्यने अपने अनुभवके तराजूमें तोल,

मनके खरलमें घोंट, बुद्धिकी कपड़छान कर, उससे जो अर्थ, जो निचोड़ निकाला है, उसका एक शब्दमें सारांश है—चर्मजगत। यह त्वचाकी सृष्टि है, इसमें शरीरका प्रथम स्थान है। मोटी आवश्यकताओंकी पूर्ति पहले होनी चाहिए। मिट्टीके बदनको सूँघ-चाटकर ही इस मिट्टीके मनुष्यकी तृप्ति होती है—यही सनातन रीति चली आयी है। घर-द्वार, जमीन-जानवर, सन्तान सम्पत्ति और सुन्दर स्त्री—यह सब है, तो भगवानकी कृपा है। जो इससे बाहर कुछ कल्पना भी करता है, वह संसारसे ऊपर उठ गया। उसे श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं, स्नेह-दृष्टिसे नहीं। ठीक भी है, माया कहते हैं; इस सुन्दरताके माया-पाशसे मुक्त होना क्या आसान है? विदुषीसे विदुषी स्त्रीको अपने सुन्दर न होनेकी कमी खटकती रहती है, और सुन्दर-स्त्री बिना विद्याके सहज ही निभ जाती है। लोग कहते हैं—भई, मानसिक-सौन्दर्यको हम ऊँचा स्थान भले ही दे, परितृप्ति सुन्दर अंग ही देते है।'

एक रोज बेटेके सिरमें तेल लगाते हुए माता कल्याणीने पूछा—"क्यो रे राम, मेरी चाँद-सी बहू तेरे पसन्द आयी कि नहीं?"

स्पष्ट-भाषी लड़केने कहा—"आयी क्यों नहीं, मा, अपने रामके लिये तुमने सीता जो खोजकर ला दी।"

बहूके रूप-लावण्यकी बातको प्रश्नातीत समझकर, लगेसे लड़केके हृदयकी थाह लेनेके लिए माने सहज ढंगसे कहा—"कैसा मधुर स्वभाव पाया है, जैसे चाँदनी छिटक रही हो—सभी कुछ जिसमे खिल उठता है। जैसा तू है, वैसी ही वहू

भी मिल गयी। पानीकी तरह खुद दब जाती है, दबाना किसीको नहीं चाहती।"

माताकी प्रसन्नतासे मन-ही-मन प्रसन्न होकर बेटेने श्लेषसे कहा—"कह तो चुका हूँ मा, एकदम सीता है, हर समय जमीन-हीमे गड़ी रहती है। केवल इस परदेके रावणसे उसका उद्धार करना है, जिसने उसे पाँच आदमियोंकी पंचवटीसे हटाकर दूर अन्ध-संस्कारोकी लंकामें छिपा रखा है। इस अग्नि-परीक्षामें तुम्हीं उसे उत्तीर्ण करवा सकती हो, मा!"

बेटेने माको समझानेके लिए उस राम-रावणकी चिर-परिचित तुलनाको और भी आगे बढ़ाकर परदे और रावणमे पूरा-पूरा सादृश्य दिखला दिया। कहा—"मा, यह परदा और रावण एक ही पक्षीके दो पंख हैं। दोनो मनुष्यके पाशविक आकांक्षाओं-के चिह्न स्वरूप हैं। जिस स्थूल लालसाओंके दशमुखसे, विश्व-माताका आसन देनेके लिए, सीताके उद्धारकी आवश्यकता समझी गयी थी, उन्ही वासनाओंकी दृष्टिसे स्त्रीको बचानेके लिए इस परदेका भी जन्म हुआ है। जिस तरह कबूतर आँखें मूँदकर बिल्लीके मुँहसे नहीं बच सकता, उसी प्रकार इस परदेकी अन्ध-दीवारीके भीतर प्रकाश नहीं पड़ सकता। समस्त सभ्य संसार सौन्दर्यको अनिलातपकी उपज, प्रकाशकी प्रसूति मानता है।"

कल्याणीको यह समझनेमे देर न लगी कि केवल उसीकी सम्मति न पा सकनेके कारण वह अपने स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमें आनाकानी कर रही है। उसके केवल संकेत कर देनेसे ही, राम, इस चिरकालसे अलंघ्य नारी-लज्जाके समुद्रमें, बाहर-भीतर आने-जानेके लिए, अनायास ही पुल बाँध सकेगा—इसी-

लिए मानो वह उसकी सहायताका प्रार्थी हो रहा है। कल्याणी, स्नेह-शील माकी तरह, बहूके मामलेमे अपनी इच्छासे लड़केकी इच्छाओंका अधिक मूल्य समझती थी। अतएव एक रोज बहूकी ठोड़ी पकड़कर सासने बड़े ही स्नेहसे कहा—"तू अपने इस लावण्यमें इतनी अधिक लाज कहाँसे लिपटा लायी बहू! इस बड़ेसे घरमे बाहर-भीतर—सर्वत्र तुझे देख सकूँ, यही तो मैं चाहती हूँ री।" सासने सखी बनकर चुपकेसे यह भी संकेत कर दिया कि उसका स्वामी अपनी स्त्रीकी इस अतुल सौन्दर्य-राशिको इस अकेलेसे घरमें समा सकनेके लिए बहुत ही बड़ी समझ, अपने इस अपार्थिव-लाभकी प्रसन्नता और अधिकारके गर्वको जैसे सर्वत्र फैला देना चाहता है। चकित-संसारकी आँखों-से प्रशंसाका और कृतज्ञ मुग्ध अन्तःकरणसे स्नेह-आदरका पुरस्कार न प्राप्तकरना यह नवीन दम्पतिके प्रति इन अन्ध-रूढ़ियो-का अन्याय और अत्याचार समझता है।

सरला संकोचके मारे मर-सी गयी, और मन-ही-मन अपनी इस देवी-स्वरूपा सासकी भूरि-भूरि स्तुति करने लगी।

[२]

रामकुमारकी शिक्षाको सौन्दर्यका सम्मोहन अधिक समयतक परास्त नहीं कर सका था। प्रथम मिलनकी स्वप्नमयी सन्ध्यामे, देश-कालकी आवश्यकतासे परे, प्रेमके प्रथमोच्छ्वासकी सतृष्णा-दृष्टिसे देखनेमे घूँघटके आवरणमें जो सुन्दरता दिखलायी दी थी, इन्हीं चार-पाँच महीनोंसे, धीरे-धीरे, नवीनताके माधुर्यके मिटते ही वह भी लुप्त होने लगी थी।

रामकुमारको सरलाका मुख घुली-हुई मिश्रीकी डली-सा, चिकना-चुपड़ा और मधुर दिखलायी देता—उसमें रूप, रंग, रेखाएँ—सब रहती, केवल भाव, केवल व्यंजना, केवल स्वर नही मिलता; या रामकुमार उसे देख न पाता हो। बादलोंके परदेसे प्रभातकी तरह उस लावण्य ग्रहसे एक प्रकारका मानसिक तेज फूट नही पड़ता था। सरला तो पत्थरकी प्रतिमा न थी, तब रामकुमार कैसे सन्तुष्ट रहता ?

हमारे समाजने अपनी अबला स्त्रीके चारों ओर जो सूक्ष्म-स्पष्ट रेखाएँ खीचकर उसके लिए जो स्थान नियत कर दिया है, जो दृढ़ मर्यादा चिरकालसे बाँध दी है, उसे हम जिस प्रकार दूरसे देख सकते है, हमारी नारी, उस तरह, अपनेको उससे अलग कर, नही देख सकती—वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित। उस संकीर्ण कारामे रहते-रहते उसे उसकी संकीर्णताका अनुभव नहीं होता। वे यम-नियम चिर अभ्यासके कारण उसका स्वभाव बन गये हैं। उसकी आत्मा समाजके लिए अपने इस आत्म-समर्पणमे खो गयी है। केवल हमारे नियम-बन्धन उसके भीतरसे हाथ-पाँव बढ़ाकर, उसके विचार-व्यवहार, मान-मर्यादा शील तथा स्वभावके रूपमे प्रकट होकर, हमसे मिलते-जुलते और परस्पर, एक दूसरेसे, सम्बन्ध बनाये रखते हैं; इसीलिए हमारी नारी सबसे अधिक वस्तु-जगतमें रहती है। वह केवल सब कुछ मानकर चलती है। सभी नियम, सभी आचार, सभी संस्कार, सभी अन्ध-विश्वास उसके लिये स्पष्ट हैं, सत्य है। उन्हींका संसार, उसका संसार है।

रामकुमार सरलाको केवल अपने आदर्शोंकी प्रतिमा बना

देना चाहता था। उसके भीतर समाजके आदर्शोंकी जो चिर-कालसे प्रतिष्ठित प्रतिमूर्ति यन्त्रकी तरह हँसती, बोलती और काम-काज चलाती थी, रामकुमारकी आँखोंमें उसका असामयिक छाया-रूप अत्यन्त खटकता था। सरला यह कभी नहीं भूलती थी कि वह ससुरालमें है। यह बात घरमें ताईने उसके हृदयमें पीड़ा होनेतक पहुँचा दी थी। वह अधिक समय सासके पास बैठने, घरका काम-काज सीखने और सासकी छोटी-मोटी सेवाओंमें बिता देती थी, यद्यपि कल्याणीको बहूसे सेवा लेना पसन्द न था। रामकुमार इन सब कारणोंसे, पत्नीको इच्छानुकूल शिक्षा देने और बाहरके आकाशमें शोभित होने योग्य मुख-चन्द्रको घूँघटके घन-रोधसे मुक्त करनेका अवकाश नहीं मिलता था। सरला धीरे-धीरे चलती, धीरे उठती, धीरे बैठती और बहुत ही धीरेसे बोलती थी। रामकुमारको इस मन्द-गति, मन्थर-विलास अथवा अवकाश-चेष्टामें रत्ती-भर सौन्दर्य या मधुरिमा नहीं मिलती थी। वह उसे मन-ही-मन सरलाकी मानसिक निर्जीवता, जड़ता, दीर्घ-सूत्रता, और न-जाने क्या-क्या समझता था।

जब रामकुमारका अभिन्न हृदय मित्र सतीश सभ्य संसार और उन्नत देशोंकी उर्वरा-भूमिमें प्रस्फुटित, विकसित और उनकी दीर्घ आयास-अनुभूतिसे परिपुष्ट, आधुनिक नारीका परिष्कृत आदर्श-रूप अपने मित्रके सामने रखता तो उसके रूप-रंगकी तुलनामें कुमारको सरलाका सौन्दर्य बिलकुल फीका, नीरस और निस्सार लगने लगता था। सतीश साधारण कम्यूनिस्टिक-टेम्परामेन्ट (स्वभाव) के अनुरूप अधिकसे अधिक पक्षपात

और घृणा-व्यंजक शब्दोंमें मध्यश्रेणीकी सभ्यताका जैसा खण्डन करता, इन भद्दी बर्बर प्रथाओंकी जैसी ऐतिहासिक व्याख्या देता, संसारके भविष्यका जो स्वर्ण-चित्र खींचता, और श्रमजीवी रूसकी स्त्रियोके स्वतंत्र-जीवनका जैसा अतिरंजित दृश्य आँखोके सामने खड़ा कर देता, उसे कुमार बड़े ही ध्यानपूर्वक और कभी-कभी मुग्ध-भावसे सुनता था।

वाह, वह उन्मुक्त अनिल और उज्ज्वल आतपमें पली हुई स्वतन्त्र नारी-मूर्ति! निर्मल आकाश जिसके नयनोको नित्य नवीन नीलिमा प्रदान करता है; सद्य-स्फुट सुमनोंका सौरभ जिसकी साँसोमे बसती है; पक्षियोंका कलरव कण्ठमे कूक भरता है; ऊषा जिसके कपोलोंमे गुलाब बन जाती है; बार-बार स्वच्छ जलमे तैरनेसे जिसके अंगोंकी तनिमा और सुकुमारितामे सजीवता आ गयी है; छहों ऋतुएँ जिसके सौन्दर्यको प्रस्फुटित करनेके लिए अपना सर्बस्व निछावर करती रहती हैं—वह सबल, स्वस्थ, सुन्दर स्त्रीके रूपका आदर्श! जिसका मानसिक सौन्दर्य अपनी ही अधिकतामें फूटकर उसके स्त्रीत्वको अपनी उज्ज्वलतामें छिपा लेता है; उस स्वतन्त्रताके आलोकमें देह-ज्ञान जैसे छायाकी तरह बिलकुल पीछे पड़ जाता है,—वह प्रशस्त आदर्श इन अन्ध-रूढ़ियोंकी संकीर्णतासे परे है।

[४]

एक दिन, तीसरे पहरके समय, जब दोनो मित्र बैठे हुए आपसमे बाते कर रहे थे, सरलाने अपने नित्यके अभ्यासके विपरीत, मानो अपने जन्म-जन्मान्तरके दुबिधा

संकोचको एक ही क्षणमें भगा, जिस सहज संयत-भावसे स्वामीके कमरेमें प्रवेशकर, छोटीसी मेजपर सुन्दर ढंगसे चायका सामान सजा दिया, उसे देखकर रामकुमार मानो विस्मय और आनन्दके मारे अवाक् हो गया। मानो रोजहीका अभ्यास हो, पाससे अपने लिए कुर्सी खिसका, उसपर बैठ, बातकी बातमें चाय तैयारकर और बड़ी ही स्वाभाविक सरल मुस्कुराहटसे मुखको मण्डित कर, उसने दोनो मित्रोंके सामने दो प्याले तथा कुछ फल और मेवे रख दिये।

"तुम्हे भी साथ देना होगा, भाभी, जब देवताने दर्शन दे ही दिये, तो इतना-सा वरदान भी दे जाय।"—भेंटको परिचयमें बदलनेके लिए सतीशने हँसते हुए अपना प्याला सरलाकी ओर बढ़ा दिया।

सरलाने बड़े ही निःसंकोच भावसे चायका प्याला सतीशको लौटा दिया, और तश्तरीसे कुछ मेवे उठाकर मुँहमें डाल लिये।

"यह तो साथ देनेका अभिनय भर हुआ।"—सतीशने अनुरोध किया।

"देवता मृत्युलोककी सुरा पीनेके आदी नहीं होते, फल-फूल ही ग्रहण कर सन्तुष्ट रहते हैं।"—बेहलाकी तरह बजकर, हँसीसे छलकती हुई भाभी, अपनेको न रोक सकनेके कारण, अपनी ही नवीन वयसके कूलोंसे उमड़ते हुए सौन्दर्यकी लहरकी तरह, एक क्षणमें कमरेसे बाहर हो गयी।

"वरदान पानेके लिए अभी बहुत बड़ी तपस्याकी आवश्यकता है।"—उमड़ते हुए हृदयको मानो स्रोत देकर, हास्यसे

कमरेको भरते हुए कुमारने प्रसन्नताकी अतिशयताके कारण प्यालेमें और भी चाय उड़ेल ली।

सरलाका वह सहज संयत साहस रामकुमारके लिए वास्तवमें बहुत बड़ी प्रसन्नताका कारण हो गया था। जिस बातको वह अपने ही अस्तित्वसे सहमी रहनेवाली अपनी पत्नीके लिए दुरूह ही नहीं, एक प्रकारसे असम्भव भी समझने लगा था, उसीको सरलाने चिर-अभ्यस्तकी तरह जिस आसानीसे कर दिखला दिया, वह कोई साधारण बात न थी। रामकुमार विस्मित ही नही, चकित हो गया था कि उस अपनी ही दृष्टिकी लाजसे कुम्हला-से जानेवाले प्राणोंमे इतना साहस, इतनी स्वतन्त्रता, कहाँ से, कैसे आ गयी।

पर सरलाके लिए वह सब उतना कठिन न था, नयी बात तो बिलकुल भी न थी। छुटपनमें ही माकी मृत्युने उसे पिताकी गोदमें दे दिया था। सरलाके पिता उनलोगोंमेंसे थे, जिनमें सभीको अपनी ओर खींच लेनेकी क्षमता होती है। उन्हें देखकर मनमे वही आनन्द-भाव उठता है, जो पूसके महीनेमे साँझकी स्निग्ध धूपसे मंडित पहाड़की चोटीपर दृष्टि पड़नेसे। नगरके प्रायः सभी प्रतिष्ठित लोग उनके सौजन्यका उपभोग करने, शामके वक्त, उनकी बैठकमे एकत्रित हो जाया करते थे। उनके आदर-सत्कारका भार सरलाके ही ऊपर रहता था। इस प्रकार पुरुष-समाजमें बरती जानेवाली शिष्टता-सभ्यतासे वह अच्छी तरह परिचित थी। और, लोगोके सामने निकलनेमे उसे झिझक या संकोच नामको भी न था; लेकिन सरलाको जहाँ एक ओर इतनी स्वतन्त्रता थी दूसरी ओर उसे वैसे ही कड़े

शासनमें भी रहना पड़ता था। गृहस्थीकी शिक्षा उसे अपनी ताईसे मिली थी। ससुराल शब्दका जिस सँकरी-से-सँकरी जगहसे अभिप्राय है, और स्त्री-जगत्में ही क्या, जनसाधारणमें भी जो फूँक-फूँककर पाँव रखनेका अर्थ प्रचलित है, उसे अनुभवकी पीड़ासे असमयमें ही प्रौढ़ताईने छोटी-सी बालिका सरलाके मनमें बैठानेमें किसी प्रकारकी कोर-कसर नहीं रखी थी। सासके शासनमे जिस तरह बिलकुल सिकुड़कर, काँटेकी नोकपर रहना होता है, उसका अभ्यास भी भावी वधूको घरहीमें करा दिया गया था। सासकी भौंहोंके उठने-गिरनेके साथ जिस तरह उठना-बैठना पड़ता, इशारेपर जिस तरह रहना होता और उसकी उच्चारण-हीन चुप्पीके जिस तरह भिन्न-भिन्न अर्थ लगाने पड़ते हैं, उन सबको लड़कीके कानोंमें इतनी बार डाल दिया था कि रेलकी यात्राके बाद उसके घर-घर शब्दकी तरह वे बातें सरलाके मस्तिष्कमें अपने आप चक्कर खाती रहती थीं।

ससुरालमें आकर सरलाने देख लिया था कि उसके यहाँ सासके शासनका पानी बिलकुल ही गहरा नहीं है। स्वामीके स्वभावसे भी धीरे-धीरे वह अच्छी तरह परिचित हो गयी थी। आरम्भमें उसे जिस अतिरंजित शील-संकोचका अभिनय करना पड़ा, वह नव-बधूका था, उसका अपना नहीं; लेकिन रामकुमारको तो बहू बनना नहीं था, इसलिए वह इस गुप्त-सीखकी बात नही जानता था। अस्तु, सासकी अनुमति पानेके बाद सरलाने सहसा अपने जिस व्यवहारसे स्वामीको प्रसन्न करनेके साथ-साथ चकित भी कर दिया था, उसका यही रहस्य था।

[५]

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो पहिलेसे ही चिरपरिचितसे लगते हैं; उनके हृदयमे सभी कुछ समा सकता है। अन्तःपुरकी संकीर्णतामें अपनी ही सुविधाका सामान होता है। बैठकका कमरा सभीके लिए खुला रहता है, उसके भीतर आने-जानेमें किसीको असुविधा नहीं मालूम पड़ती। इसी प्रकारकी एक उदार सार्वजनिकता, एक सर्वदेशीय संस्कृति नवयुवकोंके स्वभावमे प्रायः देखनेको मिलती है। इसका कारण शायद यह हो कि उनके पाँव अभी सांसारिकताकी स्थूल मिट्टीमें नही गड़े होते। जो हो, सतीशमें यह बात एक स्पष्ट और प्रत्यक्ष मात्रातक थी। उसका उज्ज्वल हास्यमंडित मुख उसके हृदयका दर्पण था। सभी देख लेते थे, वह साफ-सुथरा स्फटिक-का बना हुआ है। फलतः नयी भाभी सरला भी थोड़े ही समयमें सतीशसे आत्मीयकी तरह परिचित हो गयी थी। घंटोतक बैठकर दोनो आपसमें बातें करते। सतीशकी रसिकता बीच-बीचमें अपना रंग देती रहती। उसकी परिहास-प्रियताको अशिष्टता छूतक नहीं गयी थी। रामकुमार, कार्य न रहनेपर भी, कभी-कभी उन दोनोको कमरेमें छोड़ स्वयं बाहर चला जाता था। इस तरह वह सतीशके प्रति अपने विश्वका प्रमाण देना चाहता हो, यह नहीं,—वह इस प्रकारकी स्वतन्त्रताको अस्वाभाविक अथवा अनुचित न मानकर मनुष्यके हृदयकी संकीर्णता और क्षुद्रताको मिटा देनेमे अपना गौरव समझता था। मानव-स्वभावकी दुरूहताके कारण संसारने स्त्री-पुरुषके बीच जो छोटी-बड़ी रेखाएँ खींच दी हैं, सीमाएँ बाँध दी हैं, उनपर

विश्वास करना वह अपनी दुर्बलता समझता था। रामकुमार यह नहीं सोचता था कि यदि संकीर्णता सचमुच ही मनुष्यके भीतर हो, तो वह इस तरह नहीं मिटायी जा सकती। हाँ, भुलाई-छिपाई अवश्य जा सकती है।

लेकिन सब-कुछ होनेपर भी सतीश जिस प्रकार सरलासे एकदम हिल-मिल गया था, सरला उस तरह अपनेको नहीं दे सकी थी। उसने एक सूक्ष्म-रेखा अपने बीच बनी रहने दी, जिसे सतीश नहीं देख सकता था। सतीशका स्फटिक बिलकुल स्वच्छ था, इसमें उसे रत्तीभर सन्देह न था—और यही कारण था कि वह अपने स्वामीसे उनके मित्रकी प्रशंसा करनेमें कभी न थकती थी; यहाँतक कि कभी कभी रामकुमार, अपनी असावधानीके क्षणोंमें, उस प्रशंसाके उद्गमके बारेमे सन्दिग्ध हो उठता था—लेकिन सतीशके स्फटिकमें एक चकाचौंध भी थी, जिसे सरला नहीं समझती थी, और समझनेका प्रयत्न करनेमे उसका हृदय—न जाने क्यों—डर जाता था। सतीशकी स्वतन्त्रतामें सीमा न थी, या वह इतने आगे बढ़कर थी कि सरलाके लिये उसे देख सकना असम्भव था। वह निर्मल थी, पर उसका कूल न मिलनेके कारण सरलाको उसमें केवल दूरतक चमकता हुआ प्रसार-ही-प्रसार दिखायी देता था, जिसमे सरलाके उचित-अनुचितकी दोनों सीमाएँ बीचहीमें डूब जाती थीं। इसीलिए उस चौंधिया देनेवाले प्रवाहमें वह आँखें मूँदकर नहीं कूद सकी थी।

पर रामकुमार जो सतीशको इतनी अधिक स्वतन्त्रता दे रहा था, उसका एक और भी कारण था। जब कुमारके सुधार-

प्रिय हृदयमें पहले-पहल अपनी पत्नीको अपनी मित्रमंडलीके सामने उपस्थित करने और खासकर सतीशसे मिलनेकी वालोचित उत्सुकता पैदा हुई थी, तब उसने बाहरकी बैठकमें, मित्रोंके आस-पास, सरलाके लिये कोई स्थान निश्चित-रूपसे स्थिर नहीं कर लिया था। उसने कुछ भी नहीं सोचा था कि इस स्वाधीनताकी सीमा कहाँपर रखनी चाहिए। और इसकी आवश्यकता भी नहीं, लोकाचारको, लोकरीतिको सभी जानते, सभी समझते हैं। सरला सनातन मर्यादासे बँधी हुई अन्तःपुरकी देहलीसे बहुत आगे बढ़ आयी हो, यह बात न थी; स्वयं व्यवहार-ज्ञान-शून्य सतीश उसके बहुत समीप खिसक आया था। यह बात असुन्दर न लगनेपर भी भीतर-ही-भीतर, कुमारको स्पृहणीय नहीं जान पड़ती थी। पर इस सन्देहजनक भाव-परिवर्तनका कारण कहीं उसकी मानसिक संकीर्णता न हो, इसीलिए कुमार उसपर कोई मत भी नहीं निर्धारित करना चाहता था; बल्कि उस द्विधा-भावको अपने भीतर दबा देनेके लिए वह शतीशकी स्वतन्त्रताको सीमित करनेके बदले और भी, ढील देता जा रहा था।

सतीश क्यों इस तरहकी स्वतन्त्रता ले रहा था?—हमें सतीशके मनोविकासको समझना होगा। कालेजके विद्यार्थी सतीशने संसारका ज्ञान केवल इतिहासके पृष्ठोंसे संचित किया था, पर उसका ठीक-ठीक ऐतिहासिक दृष्टिकोण भी न था। हृदयके संस्कार प्रबल होनेके कारण उसने इतिहासद्वारा सत्यके आदर्श स्वरूपका दर्शन करना चाहा था, फलतः उसका भावुक हृदय बड़े वेगसे साम्यवादकी ओर झुक पड़ा। साम्यवादने

केवल ऐतिहासिक तत्त्वोंका मननकर संसारके कल्याणका मार्ग निश्चित किया है। उसने मनोविज्ञानको भी इतिहासके तीस डिग्रीके कोणसे देखा है, इसलिए उसका आदर्श साम्राज्य अथवा स्वर्ण-स्थितिकी कल्पना भी केवल इतिहासके मनुष्यके लिए है। पूर्ण मनुष्योंको देखनेका उसने प्रयत्न ही नहीं किया। कहानीके संक्षेप-शब्दोंमें साम्यवाद केवल ऐतिहासिक आदर्शवाद है।

सतीश सुदूर भविष्यके अनिश्चित अन्धकारमें टिमटिमाते हुए उस आदर्श-आलोक-मधुरिमाकी ओर आँखें गड़ाये, अपने चारों ओर व्याप्त, कठिन सामाजिक बन्धनोंमें बँधे हुए इस हँसते-बोलते, काम-काज करते हुए सत्यके प्रत्यक्ष रूपको मानो देख ही नहीं पाता था। इसीलिए जब वह अपनी बालोचित सरलतासे अनायास सरलाके सामने ही कह बैठता था कि संसारमें साम्यवाद और स्त्रीके सिवा रखा क्या है, तो वह अनर्गल होनेपर भी उसके मुँहसे बुरा नहीं लगता था। वह बार बार दुहराता—मानव जातिके कल्याणके लिए कोई सत्य, सरल, संगत और साध्य-पथ है तो वह साम्यवाद; मनुष्यके सुख, स्नेह, सौहार्द्य और सहवासके लिए कोई सामग्री है तो स्त्री।

प्रत्येक युगके सामने सत्यका जो आदर्श स्वरूप प्रस्फुटित और विकसित होता है, वह वर्तमानकी दृष्टिसे केवल कल्पना-मात्र है। वह केवल भविष्यमें ही कार्यरूपसे पुष्पित पल्लवित हो सकता है; क्योंकि परिवर्तनका अर्थ विकास है, और विकास कामरूप, स्वतः प्रवर्तित होता है। हमारे दैनिक जीवनके आचार-विचारोंमें छना हुआ जो सत्य बरता जाता है, उसकी उपेक्षा एक व्यक्ति कर सकता हो, समाज समष्टिरूपसे नहीं कर

सकता; क्योंकि समाजके रूपमें ही सत्यका विकास होता है, उसे नष्ट कर नहीं। यही सामयिक सत्य समाजके कलेवरके भीतर वृहत् चुम्बककी तरह छिपा हुआ, उसकी कार्यकारिणी नाड़ियोंको अपनी ओर प्रवाहित कर उन्हे एक सार्वलौकिक रूप देता रहता है।

सरलाके जीवनमें चाहे कोई सिद्धान्त ज्ञान-रूपसे कार्य न करता हो, वह समाजके अन्तर्व्यापी इस चुम्बकके दर्शन भी भले ही न पाती हो, पर बाहर बरते जानेवाले सत्यके इस प्रत्यक्ष रूपका उसे अन्तःप्रेरणासे सहजहीमें आभास मिल जाता था। सत्यको सार-रूपमे समझना उसके लिए जितना कठिन था, शब्द-रूपमें देखना सुनना उतना ही आसान भी था। यह लोकाचारमें बँटा हुआ सर्वसम्मत सत्य, उसके सामने अज्ञात-रूपसे खड़ा होकर उसके सतीशके साथ अच्छी तरह घुल-मिल जानेमें बाधा उपस्थित करता था। सरला सतीशकी स्वच्छतासे एकदम तिलमिलाकर, उसे अपनी समझसे बाहर समझ, उससे सदैव अपनी रक्षा करती रहती थी। उसने दो-चार ही रोजके भीतर बाहरके कमरेमे अपने लिए अपना स्थान अपने-आप नियत कर लिया था।

[६]

सतीश आज सुबह गुलाबका एक बड़ा-सा लाल फूल लेकर रामकुमारके यहाँ आ गया था। यह गुलाब उसे रास्तेमें मिल गया हो, सो नही; उसने खास तौरपर कल शामसे ही मालीसे कहकर इसे मँगवाया था। आज सरलाका

जन्म-दिन था। गहरे लाल रेशमकी साड़ी पहने हुए, आकांक्षासे प्रदीप्त, उन्मुख ज्वालाकी तरह, सरलाने ज्यों ही कमरेमें प्रवेश किया, सतीश क्षण-भरके लिए उस नवीन सौन्दर्यके आलोकसे जैसे अभिभूत हो गया। वह उस समय बराबर बैठा तो कुर्सी-पर ही रहा, लेकिन उसे ऐसा मालूम पड़ा कि वह यकायक, भीतर-ही-भीतर, अपने स्थानसे उठकर, कुछ दूर आगे बढ़, फिर जैसे लौटकर बैठा हो।

आधुनिक बंगाल स्कूलके चित्रोंने स्त्रियोंके पहनावेके सम्बन्धमें जिस हलके रंगका आदर्श सतीशके मनमें स्थापित कर दिया था, उसके ठीक विपरीत सिरसे पाँवतक गहरे, चटकीले रंगके परिधानसे भी सौन्दर्यकी छटा इस तरह दसगुनी होकर छिटक सकती है, यह सतीशने पहले कभी नहीं सोचा था। इसीलिए जन्म-दिनके उपहार स्वरूप उस लाल गुलाबको भाभीके हाथमें न देकर, सतीशने सरलाके सिरपरसे साड़ीको सरकाकर, काले-काले बालोंके सघन अँधियालेमें उषालोककी तरह उस लाल फूलको उसकी चोटीमें खोंस दिया। सरलाका मुख सङ्कोचके मारे गुलाबसे भी अधिक लाल हो, क्षण-भरके लिये सफेद हो गया। उजड्ड सतीश रंगके इस चढ़ाव-उतारपर ध्यान न दे सकनेके कारण, परिहासके ढंगसे भाभीको, नीचेतक झुककर, सलाम कर अपनी कुर्सीपर बैठ गया।

रामकुमारको पहले तो ऐसा मालूम हुआ, जैसे धुएँके भीतरसे आगकी लपटें निकलकर उसके हृदयको झुलसा दिया है, पर वह शीघ्र ही सम्हल गया, और जब सरलाने गुलाबके फूलको चोटीसे निकालकर मेजपर रख दिया और बाएँ हाथसे

साड़ीको सिरपर डालते हुए करुण, पर संयत स्वरमे कहा—"सतीश बाबू, आपके हाथसे कोई काम बुरा न लगनेपर भी आपको इस तरह सहसा, बिना सोचे-समझे कोई काम नही कर डालना चाहिए"—उस समय कुमारने जैसे मन-ही-मन पत्नीके इस निर्देशका पूर्णरूपसे समर्थन किया, यहाँतक कि उसका सिर भी अपने आप हिलकर अपनी सम्मति जतानेमें नही रुक सका।

सतीशके मुखकी हँसी, कटी हुई पतंगकी तरह, हृदयकी डोरसे अलग हो, होठोपर चक्कर खाती हुई, जैसे वही-की-वही निःस्पन्द हो गयी। उसे मालूम पड़ा कि उसके सिद्धान्तो और सत्य-ज्ञानके प्रतिकूल कुछ न होनेपर उसके चारों ओर व्याप्त अँधेरेमें आजतक छिपा हुआ कोई छाया-सत्य सहसा अपना अस्पष्ट हाथ उसकी ओर बढ़ाकर जैसे उसका गला दबा रहा है। उसे जान पड़ा, सत्य-मिथ्या होनेसे ही कोई काम अच्छा-बुरा नही लगता, उसके और भी कारण हो सकते है। वह जैसे कि कर्तव्य-विमूढ़ हो, अपने स्थानपर, पत्थरकी मूर्तिकी तरह, ज्योका त्यो बैठा रहा।

मालीको खास तौरसे हुक्म देकर उस लाल गुलाबके फूल-को मँगवानेमें सतीशका अभिप्राय केवल उपहार देनेकी प्रथाको निभाना था, अथवा उसमें और भी अन्तःकरणमे छिपी हुई किसी अव्यक्त आकांक्षाकी प्रेरणा मिली हुई थी—इसकी आलोचना करना हास्यप्रद है। होगा, सतीशके स्वभावका नवयुवक सभी काम सोच-विचारकर नही कर सकता, तो क्या सरलामे इतनी उदारता न थी? थी, पर नारीकी मर्यादा!

एक वार तो उसके जीमें आया कि उस फूलको नोंच-नोचकर फर्शपर वखेर दे, यह नारी-स्वभावकी प्रेरणा थी; लेकिन सरलाके शीलने नारीके उद्वेगको दवाकर उसे फूल नोंचनेसे ही नहीं, मेजपर पटकने अथवा फेंकनेसे भी रोक दिया। उसकी मधुर संस्कृतिने फूलको केवल धीरेसे मेजपर रख दिया था। सरला-को केवल अपने पत्नी होनेकी मर्यादाकी रक्षा करनी थी।

स्त्रीको और भी कई काम होते हैं, पर उसके जीवनका मुख्य काम—जहाँपर उसे अपने स्त्रीत्वका सवसे अधिक अनु-भव होता है—अपने अन्तःकरणमें लवालव भरे हुए स्नेहको ठीक-ठीक यथारीतिसे वाँटना है, इसमें वह सवसे निपुण होती है। वह अपने प्रति किये गये समस्त उपकारोंको स्नेहहीसे पुरस्कृत करती है। पर उसके स्नेहमें मात्राओंका भेद होता है। वह साथ ही कई आदमियोंको अपना स्नेह दे सकती है; पर किसीको कम, किसीको अधिक। उसका मानदंड, उसका नापने-का गिलास कैसा होता है, इसे कोई नही कह सकता।

सरला सतीशसे कम स्नेह नही रखती थी। जव उसने सतीशके चिर-हास्य-मंडित मुँहकी हँसीको, वृन्तच्युत पुष्पकी तरह उसके सम्पूर्ण मुखमंडलसे अलग होकर केवल होठोंके वीच मुरझाते हुए देखा, तो उसे अपने स्नेहार्द्र हृदयमे असीम व्यथाका अनुभव होने लगा। यहाँतक कि वह अपने उमड़ते हुए आँसुओंके वेगको न रोक सकनेके कारण चुपचाप कमरेसे वाहर चली गयी।

किन्तु सवसे अधिक क्षुब्ध और आहत हुआ रामकुमार! अपनी जिस दुर्बलताके ऊपर राख डालकर वह भीतर-ही-भीतर

दबा देना चाहता था, वह आज उस लाल गुलाबके रूपमें अंगारेकी तरह सुलगकर उसे सन्ताप पहुँचाने लगी। रामकुमार-ने देखा कि जन्म-जन्मान्तरसे संचित अपने इस पति होनेके संस्कारको जैसे वह किसी तरह नहीं मिटा सकता। यही नहीं, उसका यह संस्कार अपने इस अधिकारका उससे अधिकसे अधिक उपभोग करवाना चाहता है। उसे प्रतीत होने लगा कि सरलाको बाहरके संसारमें ले जानेकी आकांक्षामें भी उसके इसी संस्कारकी प्रेरणा छिपी थी कि चार आदमियोंके सामने उसका यह अधिकार-गर्व सार्थक और अधिकार-तृष्णा सन्तुष्ट हो सके। रामकुमारने देखा कि सबसे बड़ा अवगुंठन उसकी आत्माके ऊपर पड़ा हुआ है, पत्नीका वह अवगुंठन केवल उसकी छायामात्र है। अपने हृदयके अवगुंठनको हटाये बिना वह पत्नीके सुख-स्वाधीनताका उपभोग नहीं कर सकता। उसने उठकर सतीशको गले लगा लिया, और बड़े ही व्यथित भावसे कहा—"मुझे क्षमा करो सतीश !"

सतीश इस क्षमा-याचनाका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ सका। उसने मुसकुराते हुए बाधा दी—"स्त्रियोंकी तरह बर्ताव मत करो कुमार !"

सरला जब चायका सामान लेकर अन्दर आयी, तो दोनों मित्रोंको प्रसन्न देखकर उसके हृदयका भार हलका हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि उसके भीतर छिपे हुए कुमारको ही मानो वह चोटी छूनेका व्यापार बुरा लगा था, उसे नहीं; और सतीशका फूल सन्देहके काँटेसे सर्वथा ही शून्य है, यह बात अपने-आप ही उसकी अनुपस्थितिमें मानो सिद्ध हो गयी है।

सरलाने जल्दीसे उस लाल फूलके ऊपर चा-पोची डालकर चाय तय्यार कर दी। तीनों मित्र नित्यकी तरह चाय पीने लगे। उस विना नशेके प्यालेमें परिहासका रंग खासा रहा।

बाहर और भीतर

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)

उसे देखते ही नैन विद्रोही हो उठे। मैं दसहरेकी छुट्टियोंमें कालेजसे बड़ी उमंगसे घर आया था। ब्याहके बाद वह पहली ही बार घर आयी थी। इसकी खबर भाभीने मुझे बड़े ही रस-भरे शब्दोंमें दी थी। ब्याहमें मैंने उसकी एक झलक-भर देखी थी, उसी झलककी यादमें मैंने ये तीन सालके एक हजार दिन उँगलीपर गिन-गिनकर काटे थे।

पाठको, आपमें क्या कोई भी ऐसा है, जो मेरी तरह नयी दुलहिनसे पहली बार मिलनेकी प्रसन्नतामें अपना आपा न भूल जाय? इस दुनियामें युवकके लिये दुलहिनसे बढ़कर कौन चीज मीठी हो सकती है? मैंने दर्जनो हिंदोस्तानी और विलायती काव्य, नाटक तथा उपन्यास पढ़े थे। कालिदास-की शकुन्तलाकी मूर्ति तो मेरे मानस-नेत्रोंमें बस रही है।

जैसे ओससे भीगा हुआ गुलाबका फूल वसंतकी हवामें झूम रहा हो, वैसे ही लज्जा, कोमलता और सुन्दरताकी मूर्ति-सी शकुन्तला मेरे मनमें झूलती रहती है। मैंने शेक्सपियरकी रोज़ालेंड और जूलियट भी अपनी आँखोंके हिंडोलोंमें झुलायी हैं। मैं क्या मनुष्य नहीं, युवक नहीं, मेरी रगोंके गर्म खून नहीं? अजी, मैंने नयी दुलहिन पायी थी तीन साल पहले। पर हिंदू-जातिमें जन्म लेनेके कारण ब्याहसे पहले उसे नहीं देख सका, पसन्द करने, प्यार करने, हृदय और आँखोंका सौदा करनेका सुबीता न पा सका, तो भी क्या हुआ? भारतीय स्त्रियों जैसा रूप, सच्चा प्यार! भाभीहीको लो। दुनियामें कौन फूल ऐसा सुन्दर और कोमल हो सकता है। वह ईश्वरका दिया हुआ आशीर्वाद-सा है, संसारको सुखी बनानेके लिये वही काफी है। भैया तो जैसे भाभीमें घुल गये हैं। मैं जब उन्हें याद करता हूँ, उन्हें प्रणाम करता हूँ।

ऊषा कैसा प्यारा नाम है। जबसे मैंने ऊषासे ब्याह किया है, हमेशा उषा-कालमें जाग उठता हूँ। मैं एकटक देखता रहता हूँ। कितनी प्यारी सुनहरी किरणोंको धरतीपर बिखेरती। पूर्वके आसमानपर पीली लगती है। वह ऊषा-पीला, शांत, उजला आलोक। वह कैसी प्यारी लगती है—किस तरह आनन्द देती है।

ऐसे ही मेरी ऊषा भी मेरे जीवनके अँधेरेको छूते ही उज्ज्वल आलोक करेगी।

उसके पिता रायबहादुर हैं, सेशन जज हैं, प्रतिष्ठित नागरिक हैं। वह फार्वर्ड घरानेकी शिक्षिता कन्या है। ऐसे उच्च

घरानेकी शिक्षिता कन्याएँ क्या मैंने देखी नहीं? मेरे ही क्लासमे लगभग आधी दर्जन ऐसी कुमारियाँ पढ़ती हैं। जब वे क्लासमें आकर बैठती हैं, क्लास जैसे जगमगा उठता है, देखकर प्राण हरे हो जाते हैं, संसार सुन्दर हो जाता है। उन शिक्षा-संगिनियोंका वह क्षण-भरका संग मेरी नस-नसको जवान बना देता है। नीलाकी गहरी आसमानी साड़ी, चंद्रमा-सा मुख और हथिनीके समान मस्तानी चाल प्रोफेसर भी देखते ही रह जाते हैं। नलिनी जब आती है, आँधीकी तरह; उसके मोती-से दाँत और उभारदार सीना देखकर कलेजेमें हिलोरें उठने लगती हैं। लीलाकी चश्मेदार आँखोसे जो हँसी बिखरती है, उसपर क्लास-भरके लड़के लोट-पोट हो जाते हैं। कहाँतक कहूँ? लेकिन मैं तो तीन सालतक यही सोचता रहा कि मेरी ऊषा इन सबसे बढ़-चढ़कर होगी। जब-जब मेरा मन इन स्वदेशी मिसोंकी ओर मचला, जो बीसवीं सदीमें लापरवाहीसे सड़कोपर अपना रूप छितराती फिरती हैं, तो मैंने उसे समझा-बुझाकर काबूहीमें रक्खा। तीन साल इसी तरह मैंने पूरे किये। भीतर-ही-भीतर मैं ऊषाको अपने बिलकुल नजदीक खींच लाया। मैंने उसे देखा नहीं, समझा भी नहीं, पर इससे क्या? वह मेरी दुलहिन है। मैं इस बात-को नहीं मानता कि जिन स्त्री-पुरुषोंमे प्रेम हो, वे ही ब्याह करें। मै तो इस उसूलका क़ायल हूँ कि जिनसे ब्याह हो जाय, वे स्त्री-पुरुष आपसमें प्यार करें। इसलिये ऊषाको न पाकर भी मेरे प्यारका पौदा तो बढ़ता ही गया।

"अब मैं एम्० ए० पास कर चुका। मेरी पढ़ाई पूरी हो

चुकी। ऊषा भी घर आ गयी। भाभीने मुझे दौड़ आनेको लिखा था, सो मैं तूफान-मेलसे दौड़ा हुआ घर आ पहुँचा। पहली मुलाकात थी, इससे मेरा कलेजा धड़क रहा था; लेकिन खुशीमें मेरे रक्तकी एक-एक बूँद नाच रही थी। दिन इन्त-जारी और इधर-उधरकी खट-पटमें बीता, रातको ज्यों ही वह मेरे कमरेमें आयी, उसे देखते ही मेरी आँखें जल उठीं।

(२)

क्यों? सो कहता हूँ, सुनिये। मैंने सोचा था, वह धीरे-से ज्यों ही मेरे कमरेमें आएगी, लेवेंडर और सेंटोंकी लपटोंसे कमरा महक उठेगा। उसकी रूप-ज्योतिसे मेरे कमरेमें चाँदनी हो जायगी। जैसे मेरे क्लासमें मेरी सुघड़, काली सहपाठिकाओंके आनेसे हो जाता था। वह उन्हींकी तरह छिप-छिपकर, नयन-बाण चला-चलाकर मेरे सोये हुए हृदय को जगाएगी, और उन्हींकी तरह मंद मुस्कानसे मेरे मनको सुख-सागरमें डुबोएगी। वह आकर, धीरे-धीरे लाजसे नीचा मुँह कर मेरे पास खड़ी हो जायगी। इसके बाद क्या करना होगा, सो क्या मैं जानता नहीं? अनाड़ी नहीं हूँ, मैंने सब सोच रक्खा है। मैं उसे खींचकर पास बिठा लूँगा—घूँघट दूर करूँगा, और उस चाँद-से मुखको चूम लूँगा। बार-बार चूमूँगा। इतनेहीसे मेरा जीवन सफल हो जायगा। जिस दिनकी यादमें मैंने दुनियाकी सुन्दरियोंको हेच समझा था, वह समय आज आ गया। अहा! मैं कितना भाग्यवान् हूँ। उसके सदुपयोगके सब साधन मैं जुटाए बैठा हूँ। भाभीने बहुत-

सी मिठाई, फूल-मालाएँ, इत्र, सेंट और न-जाने क्या क्या मेरे पास रख दिये थे। फिर मैं भी तो ऊषाके लिये बहुत-से उपहार लाया था। वे सब मेरे पास थे। इन सबका किस तरह उपयोग करना होगा, यह सब मैंने सोच रक्खा था।

हाँ, तो कह रहा था कि वह ज्यों ही मेरे निकट आएगी, मै उसका घूँघट हटा, लज्जावनत मुख उठाकर मधुर चुम्बन लूँगा। ओह, पतिका प्रथम चुम्बन नववधूके लिये कैसा अमिट स्नेह-चिह्न होगा! वह फिर धीरे-धीरे मेरे पास आएगी, मै उसे अंकगत करूँगा, मीठी बातोसे संकोच दूर करूँगा, उसे प्रेम-मे डुबो दूँगा, वह मेरे चरणोको चूमेगी, मुझे पाकर धन्य होगी, चिर-वियोगके लिये रोवेगी। अरे, वह साक्षात् कालिदास-की शकुन्तलाकी भाँति प्रेम-विह्वला होगी। उस दिन मैं शकुन्तलाको कई बार पढ़ गया।

पर जब वह आयी, तो मैंने अपनी आशाके बिलकुल उल्टा पाया। लेवेंडर और सेंट का नाम न था। वह एक साधारण किन्तु उज्ज्वल साड़ी पहने थी। पैरमें चप्पल थे। बाल बिखरे तो न थे, पर बहुत टीमटामसे सँवारे भी न थे। उसका वेश बिलकुल सीधा-सादा था। हाँ, उसे उज्ज्वल और सोफियाना कह सकते हैं। उसने न नमस्ते किया, न हाथ जोड़े। वह सिकुड़कर पलँगके पास भी खड़ी नहीं हुई, आकर धीरेसे कुर्सी खींचकर उसपर बैठ गयी। इसके बाद तनिक मुस्किराकर उसने कहा—"कहिये, आप प्रसन्न तो है ?"

भई वाह, यह कैसी नयी-नवेली वधू? मैंने आँख फाड़कर उसकी ओर देखा। देखते ही आँखें जल उठी। वह न तो

वैसी सुन्दर ही थी, और न उसका रंग ही गोरा था। मैं क्षण-भरहीमें अपने क्लासकी सब युवतियोसे उसका मिलान कर गया। भला, कहाँ वे परियाँ और कहाँ यह? मेरा हृदय तिलमिला उठा। मैंने तानेके तौरपर कहा—"क्या आप ऊषा रानीकी कोई दासी हैं? क्या सन्देश लायी हैं आप?"

"यही कि ऊषा रानीके स्थानपर आप मेरा स्वागत-सत्कार करें।"

"आप हैं कौन?"

"ऊषा रानी मेरी दासी हैं।"

"आपकी?"

"जी हाँ, और उनका यह फैसला है कि मैं उनके पति महाशयको अपना दास समझूँ। आप ही शायद उनके पति हैं?"

उस साधारण, प्रतिभा-हीन मुखसे ऐसी करारी, चुटीली बात सुनकर मैं दंग रह गया। वह नयी-नवेलीकी मुलाकात-का पुराना डिजाइन हवा हो गया। मैं न गुस्सा कर सका, न मेरे मुँहसे कोई बात ही निकली। मैं चुपचाप उस मुँह-जोर बालिकाके मुस्कुराहट-भरे, फड़कते होठोंको देखने लगा। उसे देखकर मैं खड़ा नहीं हुआ, उसका स्वागत नहीं किया, उसके साधारण रूपकी अवहेलना की, इसके कारण जो उसकी आँखों-में एक चमक—जो उन चुभती हुई तीखी बातोंके साथ निकली थी—देखकर मैं उसके रुआबमें आ गया। मैं सोचने लगा—इसी तरह क्या स्त्रियोंका आदर किया जाता है? यही क्या मेरी उच्च शिक्षा और सभ्यता है?

ऊषाने फिर कहा—समझे आप ? क्या आपको श्रीमती ऊषा रानीके आज्ञा-पालनमें कुछ आपत्ति है ?"

"कुछ भी नहीं।" अनायास ही मेरे मुँहसे निकल गया।

"तब आप पलँगसे खड़े हो जाइये। आपने एम्० ए० तक शिक्षा पायी, उच्च संस्कृतिके लोगोंमे रहे, पर आपको इतनी तमीज न आयी कि स्त्रियोंका मान कैसे किया जाता है।"

बाप रे, नयी दुलहिनसे डाँट खाकर मैं सचमुच लज्जित-सा होकर, उठकर खड़ा हो गया; पर फिर भी अपनी अकड़ तो क़ायम ही रक्खी।

मैंने कहा—"अब क्या करना होगा ?"

उसने एक कुर्सीकी ओर संकेत करके कहा—"बैठिये, घबराते क्यों हैं ?"

यह खूब रही, नववधूको देखकर मैं घबराता हूँ। मैंने कुर्सीपर बैठकर कहा—"घबराता क्यों हूँ ?"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर उसने परीक्षा की, कालेजकी, कालेजके जीवनकी, भविष्यकी, स्वास्थ्यकी, न-जाने क्या क्या बातें करनी शुरू कर दीं।

मैं तो जैसे खो गया। उस रात्रिके धीमे प्रकाशमें मैंने देखा, मैं किसी अत्यन्त स्नेही मित्रसे—जो अत्यन्त बुद्धिमान् कुशाग्रबुद्धि, वाक्पटु और मृदुभाषी है—बातें कर रहा हूँ। मेरा विद्रोह तो गायब हो चुका था। थोड़ी ही देरमे मैंने डरते-डरते उसका हाथ पकड़कर कहा—"ऊषा रानी, मुझे क्षमा करो।"

वह मुस्किराकर मेरी ओर देखने लगी। मैंने फिर कहा—"क्षमा करो देवी !"

उसने फिर कहा—"किस अपराधकी क्षमा ?"

मैंने कहा—"मेरी आँखें तुम्हे देखते ही जल उठी थीं। मैंने तुम्हारा बाहरी रूप देखना चाहा था। अबसे कुछ मिनट पहले-तक मैं नही जानता था कि स्त्रीके भीतर एक और चीज रहती है। मैं तो कुछ और ही सोच रहा था।"

उसने हँसकर कहा—"एक गुड़िया-सी सुन्दर दुलहिन, जिसकी एक नाक, दो कान, एक मुँह, दो आँखें, सफेद चमड़ी नन्हा-सा शरीर, यही न ?"

"लगभग यही, पर थोड़ा और भी कुछ।"

"वह कालेजकी संगिनियोका प्रदर्शन ?"

मैं चौका, मेरे मनकी बात यह कैसे जान गयी ? वह मुस्किराने लगी।

मैंने कहा—"ऊषा, मुझे क्षमा करो। अपने इस दास-को क्षमा करो।"

उसने कहा—"दासको क्षमा कर सकती हूँ, पर पतिको नही।" वह धीरेसे अपनी कुर्सीसे उठी और एक मुग्धा बालिकाकी तरह मेरी गोदमें आ बैठी। उसके शिथिल बाहु मेरे गलेमे आ गये, मैं उस जीवन-संगिनी सखीको—जिसने मेरे विद्रोहको विद्रोहसे विजय किया था—इस प्रकार विजित देख फूला अंग नही समाया। मैंने उसे हाथोंहाथ उठाकर हृदयसे लगा लिया।

कुछ देरतक हमदोनों दुनियाको भूले बैठे रहे। उसने मेरे गलेमें बाहे डालकर हँसते-हँसते कहा—"मैंने तुम्हारे पिछले तीन वर्षोंकी सौ बातें पूछ डाली, पर तुमने मेरी एक

भी नही पूछी। तो क्या मै यह समझूँ कि तुम मेरी तरफसे बेफिक्र हो ?"

मैं लज्जित हुआ। मैंने कहा—"प्यारी, तुमने तो आते ही युद्ध छेड़ दिया, और इस दासको ऐसा पछाड़ा कि मन सिट्टी-पिट्टी भूल गया।"

"अच्छा, लाओ, इस सुहाग-रातके उपलक्षमे मेरे लिये क्या लाये हो ?"

मैं बहुत कुछ लाया था—सोनेकी चेन, घड़ी, एक क़ीमती बनारसी साड़ी, एक-दो जड़ाऊ गहने, पर वे सब क्या इस महामहिमामयी, गौरवशालिनी पत्नीके योग्य थे ? मैंने लज्जित होकर कहा—"तुम्हारे योग्य तो कुछ नही है ऊषा, देते लाज लगती है।"

"देखूँ तो।"

उसने एक-एक वस्तु को देखा, हँसी। उन्हे आदर और उछाहसे पहना, फिर प्यार-भरी दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा—"सुहाग-रात तो तुम्हारी भी है, कुछ मुझसे उपहार न लोगे ?"

"मैने तुम्हें पा लिया, अब और कुछ न चाहिए।"

"मैंने भी तो तुम्हें पा लिया, फिर भी मुझे उपहार मिले ही। तुम्हारे लिये मै भी कुछ लायी हूँ।"

मैंने सोचा—रायसाहबने कुछ रुपए दिये होगे, या कोई चीज। मैंने कहा—"रहने दो, मुझे अब और कुछ न चाहिए।"

"हाँ, वह कुछ उतनी क़ीमती चीज़ नही है, पर वह मैं तुम्हारे लिये लायी हूँ।" उसके मानी चेहरेपर फिर वही तेज

और नेत्रोंमें चमक उत्पन्न हो गयी। मैंने जल्दीसे कहा—"तो मेरी रानी, दो न, मैं उसे पाकर कृतार्थ हो जाऊँ।"

उसने धीरेसे आँचलसे एक काग़ज निकालकर मेरे हाथमे दे दिया। मुझे कौतूहल हुआ। क्या रायसाहबने मुझे कुछ दान-पत्र दिया है? रोशनी तेज करके देखा, तो दंग रह गया। यह ऊषा के बी० ए० ऑनर्समें, प्रथम श्रेणीमें, पास होनेका सार्टिफिकेट था।

मैंने सपनेमें भी नहीं सोचा था कि ऊषा इतनी उच्च शिक्षा-प्राप्त है। मैं पागलकी भाँति ऊषाकी ओर दौड़ा। मैंने कहा—"ऊषा, मेरी रानी, मेरी मालकिन, तुमने मेरा जीवन सफल कर दिया।"

ऊषाने धीरेसे कहा—"इन तीन वर्षोंमें यही कर सकी।" उसका स्वर काँप रहा था। दूसरे ही क्षण हमदोनों एक थे। हमलोग प्रेमी ही नहीं, गम्भीर दम्पति हैं। हमारे प्राणोंसे प्राण और शरीरसे शरीर घुलकर एक हो गये हैं। हम भीतरतक स्त्रीत्व और पुरुषत्वको देख चुके हैं, बाहरके लिये हम अधेड़ हैं।

भाभी का बन्दर

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

मैं लपका चला जा रहा था। इसी समय एक ओरसे आवाज आयी, "पण्डितजी!" मैंने घूमकर देखा—एक परिचित नवयुवक मेरी ओर आता दिखायी पड़ा। उसका नाम श्यामनारायण था और बी० ए० का विद्यार्थी था। मुझे उसने प्रणाम किया। मैंने मुस्कराते हुए प्रणामका उत्तर देकर पूछा, "कहो, क्या हालचाल है; परीक्षा हो गयी?"

"जी हाँ!"

"परचे कैसे किये?"

"अपनी समझमें तो मैंने ठीक ही किये हैं। पास होनेकी पूरी उम्मीद है।"

"तो बस ठीक है। कहाँ जा रहे हो?"

"ऐसे ही घूमने निकला हूँ। आप कहाँ जायँगे ?"

"पार्ककी तरफ जा रहा हूँ।"

"तो चलिये, मैं भी उधर ही चल रहा हूँ।"

हम दोनों चले। कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें होती रही। सहसा वह बोल उठा, "पण्डितजी बन्दर तो न पालियेगा ?"

यह विचित्र प्रश्न सुनकर मैं चौंक पड़ा। मैंने उसकी ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा, "क्यों, क्या बन्दरोंकी आढ़त खोली है ?"

वह हँसकर बोला, "नही आढ़त तो नहीं खोली है। एक बन्दर हमारे यहाँ है। हम उसे निकालना चाहते हैं; लेकिन ऐसी जगह देना चाहते हैं, जहाँ वह सुखसे रहे। इसीलिए पूछा।"

"सुखसे तो वह कम्पनी-बागमे रहेगा, जहाँ बन्दरोंकी छावनी है। उसे कम्पनी-बागमें छुड़वा दीजिए।"

"वहाँ उसका गुजारा नहीं होगा। वह पालतू बन्दर है। बचपनसे आदमियोंकी संगतिमें रहा है—कम्पनी-बागमें नही रह सकता। जंगली बन्दर पालतू बन्दरको नही रहने देते।"

"मनुष्यकी संगतिमें वह अछूत हो जाता है, इसीलिए शायद जंगली बन्दर उसका बहिष्कार कर देते है।"

"कारण चाहे जो हो, पर बात ऐसी ही है। आपने कभी बन्दर पाला है ?"

"आप अपना मतलब फर्माइये।"

"न पाला हो तो पालकर देखिये। बड़ा लुत्फ आता है।"

"परन्तु उस लुत्फका तिरस्कार आप क्यों कर रहे हैं ?"

"हम तो काफी लुत्फ उठा चुके। अब कुछ परिस्थिति ऐसी है जिससे उसका रखना कठिन हो रहा है। इसलिए किसी ऐसे व्यक्तिको देना चाहते हैं जो उसे अच्छी तरह रक्खे।"

"खैर, मुझे तो वन्दर-वन्दर पालना नहीं है। अपने मित्रोंसे पूछूँगा, यदि कोई पालना चाहेगा तो आपके यहाँ से मँगवाकर भिजवा दूँगा।"

"यदि ऐसा कर दीजिए तो वड़ी कृपा हो।"

'कृपा' शब्द सुनकर मैंने समझा कि कुछ दालमें काला है। क्योंकि कृपालु वह समझा जाता है जो कोई वस्तु देता है। जब दाता यह समझता कि उसकी दी हुई वस्तु ग्रहण करके प्रतिग्राही उसपर कृपा करेगा तब मामला कुछ गड़वड़ होता है। यह सोचकर मैंने उससे कहा, "आखिर मामला क्या है, जो आप उसका दान करनेके लिए इतने आतुर हैं ? किसी ग्रहकी शान्तिके लिए पण्डितोंने वन्दरका दान तो नहीं वताया है ?"

"अजी नहीं यह वात नहीं है।"

"तो फिर क्या वात है ?"

"आप सुनना ही चाहते हैं तो चलिये, पार्कमें वैठकर वताऊँगा।"

दस मिनिटमे हमलोग पार्क जा पहुँचे। एकान्त स्थान ढूँढकर हम दोनो घासके फर्शपर वैठ गये। वैठते ही मैंने कहा, "अव वताइये, क्या मामला है ?"

"लेकिन यह वादा कीजिए कि मामला सुन लेनेके वाद भी आप वन्दरको अपने किसी मित्रके हवाले करनेका प्रयत्न करेंगे।"

"अच्छा, यही सही। अगर उस बन्दरमें किसीकी हत्या करनेकी आदत नहीं है तो अवश्य प्रयत्न कर दूँगा।"

"जी नहीं, बड़ा सीधा है—काटनातक नहीं जानता।"

"तब कोई चिन्ता नहीं है।"

उसने कहना आरम्भ किया।

"हमारी भाभीको जानवर पालनेका वेहद शौक़ है। कुत्ता पाला है, बिल्ली है, तोता है, मैना है, खरगोश है। ये तो सब पहलेसे ही हैं, अभी, पन्द्रह-बीस दिन हुए, एक बन्दरवालेसे बन्दर खरीद लिया। हमारे भाई साहबको कुत्ता तथा तोता-मैना रखनेमे तो कोई आपत्ति नहीं हुई, पर बिल्ली और खरगोश-से उन्हे बड़ी चिढ़ है। और वाकई बात यह है कि इन दोनोंकी वजहसे बड़ी गन्दगी रहती है और ये नुकसान भी काफी करते हैं। लेकिन जब भाभीने बन्दर खरीदा तो भाई साहबका धैर्य्य छूट गया! वह बोले, "आखिर तुम्हारा मतलब क्या है? क्या घरको चिड़ियाघर बनाना चाहती हो?"

परन्तु भाभीने उनको समझा दिया—जैसा कि वह सदैव समझा देती हैं। हमारे भइयामें इतनी ही कमजोरी है—भाभी-के हठके सामने उन्हें दबना पड़ता है। अपनी इस हठकी ही बदौलत वह भइयाको जैसा नाच नचाना चाहती हैं, नचा लेती हैं।

"आश्चर्य है कि यह दशा होते हुए भी आपकी भाभीको बन्दर खरीदनेकी आवश्यकता महसूस हुई!" मैंने कहा।

मेरी बातपर ध्यान न देकर श्यामनारायण बोला, "जिस दिन बन्दर लिया गया, उसी दिन घरमें विद्रोह फैल गया।

भइया तो कुढ़े ही, मुझे भी भाभीकी यह हरकत अच्छी न लगी। परन्तु भइयाको 'यद्भाव्यं तद्भविष्यति' पर अवलम्बित होते देख मुझे भी मौन धारण करना पड़ा। परन्तु कुत्ते, बिल्ली तथा खरगोशने तो खुल्लमखुल्ला विद्रोहका झण्डा फहरा दिया। खरगोश तो बन्दरकी सूरत देखते ही दो छलाँगमें अपने पिजरेके अन्दर दाखिल हो गया और उसने 'अन्दर रहो' हड़ताल कर देनेमें ही कुशल समझी। बिल्ली भी बन्दरकी सूरत देखते ही फूँ-फाँ करती हुई दुम उठाकर नौ-दो ग्यारह हो गयी। परन्तु कुत्ते रामको बिल्ली तथा खरगोशके अहिंसात्मक असहयोगमे विश्वास नही हुआ। वह गुर्राकर बन्दरकी तरफ जो लपका तो बन्दर महाशय उचककर मेजपर चढ़ गये। मेजपर दो चीनी-के गुलदान रक्खे थे। उनमेंसे एक नीचे गिरकर चूर हो गया। इधर कुत्तेराम अपने दोनों अगले पंजे रखकर खड़े हो गये। बन्दरने मेजपर रहनेमें खतरा देखा। अतएव उचककर दीवारमें बनी हुई एक खुली अलमारीपर चढ़ गया। उसमें कुछ बोतलें, शीशेके ग्लास रक्खे थे—उनमेंसे दो बोतलें—एक केवड़ा-जलकी, दूसरी आमला-हेयर-आइलकी नीचे गिरकर फूट गयी। केवड़ा-जल तथा हेयर-आयलकी सुगन्धमें युद्ध होने लगा। भाभीने चिल्लाकर मुझे बुलाया। मैंने कमरेका दृश्य देखकर भाभीसे कहा, "भाभी बन्दर तुमने बुरा पाला!"

भाभी झल्लाकर बोली, "अच्छा, उपदेश पीछे देना, पहले इस जैक (कुत्ते) को तो बाँधो।"

आतंकवादी जैकको मैंने बाँध दिया—हालाँकि उसने बाँधे जानेका बड़ा विरोध किया। बँध जानेपर जैकने धमकियाँ

'ब्राडकास्ट' करनी आरम्भकी। हमलोगोंके लिए वह कोरा भूँकना था, पर बन्दररामका उन धमकियोंसे पेट पतलाया जा रहा था। खैर, भाभीने बन्दरको तत्तो-थम्बो करके अलमारी-परसे उतारा। मैंने नुकसानका अनुमान लगाया। आमला-हेयर-आयलकी बोतल २॥) रु० की, केवड़ा-जलकी बोतल १) की और १॥) रु० का गुलदान। इस प्रकार ५।) रु० का नुकसान तो बन्दररामके गृह-प्रवेशपर ही हुआ। मैंने भाभीसे पूछा, 'यह कितनेमें लिया ?"

भाभीने उत्तर दिया, 'बीस आनेमें—क्यों ?'

'अब कोई पूछे तो सवा छः रुपये बताना।' मैंने कहा।

"सवा छः नहीं, पचास बताना। चला वहाँसे बड़ा हिसाबी बनकर! 'जा, नौकरको भेज, यह काँच समेटे।"

मैंने चलते हुए कहा, 'साल-छः महीना रहा तो पचाससे अधिकका हो जायगा ?'

"संध्या समय जब भइया आफिससे लौटे तो नुकसानका हाल सुनकर बोले, मैंने तो पहले ही कहा था, मगर मेरी सुनता ही कौन है। यह जानवर महा उत्पाती होता है। अभी क्या हुआ है, आगे देखना, क्या-क्या होता है। भला, यह जानवर पालने योग्य है! लेकिन कहे किससे ?"

"भाभी बोली, 'अभी नया है, जब हिल-मिल जायगा, तब नुकसान नहीं करेगा।'

"भइया बोले, 'आखिर इसके पालनेकी आवश्यकता क्या थी, मेरी यही समझमें नहीं आता!"

"तुम्हारी समझमें तो कुछ भी नहीं आता! बन्दर पालना

अच्छा होता है। कहते हैं कि कोई बला घरमें आती है तो बन्दरके सिर पड़ती है—आदमी बच जाते हैं।" भाभीने कहा।

'फिलहाल तो यह खुद ही ऐसी बला हो रहा है कि सब बलाओंका ताऊ है।'

"तुम्हारे लिए होगा बला! चार-छः दिनोंके बाद यदि बला कहोगे तो मान लूँगी—अभी नहीं मान सकती।'

"जैक दिन-भर चिल्ल-पो मचाता रहा; क्योंकि उसे बँधे रहनेकी आदत नहीं थी। रात आयी तो यह समस्या उठ खड़ी हुई कि बन्दर कहाँ रक्खा जाय। रातमें जैकको बाँधे रखना उचित नहीं था; क्योंकि यदि वह बँधा रक्खा जाय तो घर-भरको रतजगा करना पड़े। यदि वह खुला रक्खा जाय तो बन्दररामकी जानका बीमा कौन करे। अन्तमें भाभीने बन्दरको अपने पास रखनेका जिम्मा लिया।"

"रातमें बन्दरराम भाभीकी चारपाईपर लेटे। भइयाने जो यह दृश्य देखा तो जल-भुनकर कलाबत्तू हो गये। भाभीसे बोले, 'तो यह कहो, अब यह बगलमें लिटाया जायगा! हमसे तो यह बन्दर ही अच्छा रहा। हमें तुमने कभी भी स्वेच्छासे इस प्रकार···'

भाभी बीचहीमें बोल उठी, 'क्या वाहियात बकते हो।'

'वाहियात नहीं, ठीक कहता हूँ। इस सालेको देखकर मेरा खून खौलता है—देखो तो साला किस प्रकार लिपटा हुआ लेटा है! यह मेरा अच्छा रकीब आया। किसी दिन क्रोध आ गया तो सालेकी टाँगें चीर डालूँगा।'

'हाँ, कलको अपने बाल-बच्चे होंगे और वे पास लेटेंगे तो तुम उन्हें भी न देख सकोगे।"

"अच्छा, तो तुम इसे अपना बच्चा समझती हो? लेकिन यह भी तुम्हें अपनी माता ही समझता है, इसका क्या सुबूत है? बच्चा होता तब भी गनीमत था, यह साला तो सोलहों आने बालिग है—जैसे २०-२१ बरसका जवान पट्ठा होता है।'

'इसपर भाभी बहुत झल्लायीं। उन्होंने बन्दरको उठाकर नीचे फेंक दिया। बोलीं, 'लो, न लिटाऊँगी! जैकने मार डाला तो तुम्हींको हत्या लगेगी।'

'जैक बेचारा इस मुसण्डेको भला क्या मारेगा! इससे जैककी ही जान बच जाय तो गनीमत समझो।' भइयाने कहा।

"बन्दरराम फिर उचककर चारपाईपर हो रहे और उसी प्रकार लेट रहे।

भइया बोले—'इस सालेको लुत्फ आ गया, अब यह टलनेवाला थोड़ा ही है।'

'भाभीने फिर उठाकर फेंक दिया, परन्तु वह फिर आकर लेट गया। भाभी ठिनककर बोली, 'बताओ अब मैं क्या करूँ—यह तो बार-बार आ जाता है।'

'भइया बोले, करोगी क्या—लिटाये रहो। इसने पिछले जन्ममें जो पुण्य किया है, उसका फल तो इसे मिला ही चाहे।'

दूसरे दिन एक तरफ बन्दर बँधा, दूसरी तरफ जैक। अब क्या था, दोनोंकी प्रश्नोत्तरी चलने लगी। इधर जैक भूँकता था उधर बन्दर महोदय उछल-उछलकर अपनी भाषामें न-जाने क्या-क्या सलवातें सुना रहे थे। खरगोशराम तो नजरबन्द ही हो

गये। वह अपने पिंजड़ेसे ही यह सब दृश्य देखकर ईश्वरको धन्यवाद दे रहा था कि वह काफी सुरक्षित है। बिल्ली लापता थी। लेकिन भोजनके समय फूँक-फूँककर पैर रखती हुई, काफी चौकन्नी, अपने चारों ओर देखती आयी। उसने दूरसे देखा कि जैक और बन्दरकी जवाबी लड़ रही है। कुछ देरतक वह चुपचाप बैठी देखती रही। अब उसे विश्वास हो गया कि बन्दरराम फिलहाल खतरनाक नहीं हैं। तब वह आयी; लेकिन भोजनसे निवृत्त होनेके पश्चात 'आत्मनं सततं रक्षेत' के सिद्धान्तानुसार तुरन्त ही अज्ञातवासमे चली गयी।

'मुझे मजाक सूझा। दूसरे बन्दरको चुप करनेका भी विचार था। हमारे यहाँ होलीमें भाँगकी माजून बनी थी। उसमेंसे मैंने एक बर्फी चुपकेसे लाकर बन्दरको दी। बर्फी लेकर पहले तो उसने सूँघी, तत्पश्चात थोड़ीसी दाँतसे कतरी। मीठी जो लगी तो झट मुँहमें रख ली। थोड़ी देरतक तो गालमें दाबे रहा, तत्पश्चात खा गया। इसके पश्चात् मैं एक कार्यवश कुछ देरके लिए चला गया। वहाँ से लौटकर जो देखता हूँ तो ऐठासिंह चुपचाप अफीमचीकी भाँति सिर झुकाये और आँखें बन्द किये बैठे हैं। मैंने कहा, 'कहो दोस्त, क्या हाल हैं ?' मेरा कंठस्वर सुनकर उसने आँखे खोली। आँखें अंगारेकी तरह सुर्ख हो रही थीं। कुछ क्षणोंतक मेरी ओर देखकर फिर आँखें बन्द कर लीं। मुझे एक और बात सूझी। कान धोनेकी पिचकारीमें पानी भरा और लाकर उसके मुँहपर फच्चसे मारी। मुँहपर पानी पड़ते ही ऐठासिंह एकदम उछल पड़े और इस कदर ख़फा हुए कि यदि खुले होते तो मेरी खैर न थी!

भाभी बोली, यह क्या करने लगे, बेचारेको परेशान करते हो।'

मैंने कहा—'जब पाला है तो इसका कुछ लुत्फ भी तो लेना चाहिए। सवा छः रुपये वसूल कैसे होंगे।'

थोड़ी देर बाद ऐंठासिंह पुनः समाधिस्थ हो गये। मेरा इरादा फिर पिचकारी मारनेका था; पर भाभी नाराज होने लगीं।

"दूसरे दिन मैंने फिर माजूनकी बरफी दी। उसने हाथमें लेकर बर्फी सूँघी, फिर हाथसे जमीनपर रगड़ी—शायद उसका नशा पोंछनेके लिए ऐसा किया हो। रगड़कर छोड़ दी और उसकी ओर पीठ करके बैठा। लेकिन बीच-बीचमें सिर घुमाकर देख लेता था कि पड़ी है या नहीं। दो-चार दफे यह क्रिया करके फिर घूमा और पैरसे धीरे-धीरे उसने बर्फीको अपनी ओर खिसका-खिसकाकर अपने बिल्कुल निकट कर लिया और बैठ गया। मैंने एक लकड़ीसे बर्फी खींचनेका प्रयत्न किया। ज्यों ही मैंने बर्फीकी ओर लकड़ी बढ़ायी त्यों ही उसने चट उठाकर मुँहमें धर ली। थोड़ी देरतक गालमें दाबे रहा, तत्पश्चात् खा गया। आध घंटे पश्चात फिर वही दशा हुई। आँखें बन्द, सिर झुका हुआ। मैंने पुनः पिचकारीका प्रहार किया। उसने फिर चौंककर छलाँग मारी। आज उसे बड़ा नागवार गुजरा। बड़ी देरतक मेरी ओर देखकर खों खों करता रहा। उस दिन-से मेरी उसकी शत्रुता हो गयी। जब मुझे देखता तो कान दबाकर खों-खों करने लगता। तीसरे दिन मेरी इच्छा फिर माजून देनेकी हुई। परन्तु भाभी बिगड़ने लगीं कि 'क्या उसे भँगेड़ी बनायेगा!" मैंने भी सोचा कि कहीं कमबख्तको भाँगकी

आदत पड़ गयी तो बड़ी मुसीबत होगी। नशेके उतारके वक्त उसकी बुरी दशा होती थी। मिनिट-मिनिटपर जँभाई लेता, कभी लेट जाता, कभी फिर उठकर बैठता। जैकने भूँकना बन्द कर दिया था। वह भी चुपचाप उसकी इस दुर्दशाको देखा करता। उस समय ऐंठासिंह अपनी जानसे बेजार दिखायी पड़ता था। मुँह लटककर लौकी हो जाता था। मै पीछेसे जाकर खोपड़ीपर एक चपत रसीद करता तो कुछ क्षणोंके लिए आग बबूला होकर खूब चिल्लाता और उछल-फाँद करता, परन्तु थोड़ीदेर बाद फिर वही दशा हो जाती।

एक दिन भाभीकी माता भाभीको देखने आयी। वह काशी जा रही थी—भाभीसे मिलनेको चौबीस घंटेके लिए यहाँ ठहर गयी। उस दिन संयोगवश बन्दरकी जंजीर, बाँधते समय कुछ ढीली रह जानेके कारण खुल गयी। भाभीकी माता जो उधरसे निकली तो बन्दर उचककर उनके काँधेपर चढ़ गया। वह चीख मारकर भागी। भागते समय ठोकर जो लगी तो मुँहके बल गिरी। आगेके दो दाँत हिलते थे, वह टूटकर बाहर आ गये। बन्दर कूदकर अलग हो गया। हमलोगोंने दौड़कर उन्हें उठाया। भाभीके काटो तो लहू नही। माताने भाभीको बहुत डाँटा। बोली—'बाहरी लड़की, ऐसे-ऐसे जानवर पाल रक्खे हैं—कोई भला आदमी तेरे यहाँ क्यो आवेगा! मै अभी अभी जाऊँगी, मेरा असबाब बँधवा दे।'

भाभीने खुशामद-बरामद करके उन्हे शान्त किया। मैंने उनके दोनो दाँत पुड़ियासे लपेटकर उन्हें दिये और कहा—'इन्हें काशीजी जाकर गंगामें छोड़ देना।'

जब माताजीका क्रोध शान्त हुआ तो बोलीं—'ये दाँत बड़ा दुख दे रहे थे। मैं इन्हें उखड़वानेका विचार कर भी रही थी।'

यह सुनकर मैंने भाभीसे कहा—'यदि हम सबलोग दाँत उखाड़नेका व्यवसाय शुरू कर दें तो काफी आमदनी हो।'

भाभी कुढ़कर रह गयी। इधर बन्दररामने उपद्रव मचाना शुरू किया। तीन-चार फूलोंके गमले तोड़ डाले। जबसे बन्दर बँधा रहने लगा था, तबसे खरगोशराम बाहर निकलने लगे थे। उस समय वह बाहर घूम रहा था। बन्दरने उसका कान पकड़ा और थोड़ी दूरतक घसीटता हुआ ले गया। हम-लोग दौड़े तब छोड़ा। छूटते ही खरगोश बेतहाशा भागा और अपनी काबुकमें घुस गया। उसने समझा होगा कि आज बला टल गयी भाभीने बड़ी कठिनतासे उसे पकड़ा। उन्हींके वशका है भी, मुझसे तो शत्रुता ही मानता है।

"इस प्रकार जब छूट जाता, तब थोड़ी देर उपद्रव और कुछ-न-कुछ नुकसान करके काबू में आता। अभी तीन-चार दिनोंकी बात है, भइयाके लिपट गया था।

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"अब क्या बताऊँ !" इतना कहकर वह मुस्कराया।

"यदि सर्वथा अकथनीय बात हो तब तो न बताओ—अन्यथा बतानेमें क्या हर्ज है ?"

बात यह हुई कि इतवारका दिन था। दो पहरमें भाभीने बन्दरको खोलकर अपने पास बँधवा लिया और उससे खेलने लगीं। इस समय वहाँ भइया पहुँच गये भइयाने भाभीसे कुछ छेड़छाड़ की होगी—बस यह देखकर वह भइयाके लिपट गया।

वह तो कहिये भइयाने दोनों हाथोंसे उसकी गर्दन पकड़ ली अन्यथा बहुत सम्भव था कि वह भइयाको भंभोड़ खाता। भइया भाभीसे बोले—'तुमने इसे मेरा खून करनेके लिए पाला है। यदि तुम्हें इसीको खसम बनाके रखना हो तो रक्खो—आजसे तो मैं तुमसे बात नहीं करूँगा!' इतना कहकर भइया क्रोधमे भरे हुए घरके बाहर चले गये। दिन-भर न जाने कहाँ रहे। रातके नौ बजे लौटे। भइयाके चले जानेके बाद भाभी बहुत रोयी। मुझसे बोली—'इस निगोड़ेको किसीको दे दो या कही छुड़वा दो—अब मै इसे नही रक्खूँगी।' उस दिनसे वह रात-दिन बँधा रहता है। एक मिनटके लिए भी नहीं खोला जाता।

"और रातमें कहाँ रहता है?" अपने रामने पूछा।

"रातमें भी बँधा रहता है। अब जैक उससे नहीं बोलता। वह समझ गया कि यह भी घरका ही जानवर है।

"तब गनीमत है। यदि कही उसकी आदत यही होती कि···"

श्यामनारायण मेरा तात्पर्य समझकर बोला—"नही, वह आदत नहीं रही! भाभीने उसे तीन-चार ही दिन अपने पास लिटाया। उसके बाद पहले तो जैकके डरसे ऊपर छतपर बँधवा देती रही, बादको जब जैकका विरोध-भाव जाता रहा, तब कही भी बाँध दिया जाता था। हाँ, तीन-चार दिन तो वह खूब चीखा-चिल्लाया; परन्तु फिर शान्त हो गया। यह उस बन्दरकी कथा है। अब भाभी मेरे नाकमे दम किये हुए है—नित्य कहती हैं कि बन्दरका कुछ प्रबन्ध किया? अब आप ही बताइये, मै क्या प्रबन्ध करूँ?"

"किसी बन्दरवालेको दे दो।"

"बन्दरवाले नहीं लेते। वे कहते हैं—'हम क्या करेंगे! सीखा हुआ होता तो हम ले लेते।"

"तो उसे कम्पनी-बागमें छुड़वा दो।"

"भाभी वहाँ नहीं छुड़वाने देती। कहती हैं, जंगली बन्दर उसे मार डालेंगे।"

"अजी न कहीं मार डालेंगे। दो-एक रोजमें सब हिल-मिल जायँगे। भाभीसे यह कह दो कि मित्रने माँगा है, उनके यहाँ पहुँचाये देता हूँ और बागमें छुड़वा दो। झगड़ा मिटे।"

"हाँ, यह तरकीब ठीक है—थोड़ा झूठ तो बोलना पड़ेगा।"

"यदि आप हरिश्चन्द्रके अवतार नहीं हैं तो ऐसे अवसरपर झूठ बोलनेमें कोई हर्ज भी नहीं है।"

"ठीक है, ऐसा ही करूँगा।"

श्री रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०

रूपा सचमुच ही रूपकी खान थी। कुन्दनका-सा रंग, सुन्दर मुख, बड़े-बड़े रसीले नेत्र—उसे सुन्दरियोंमें एक श्रेष्ठ पद दे सकते थे, किन्तु वह अछूत थी, इसीसे उसका सारा रूप-रंग वृथा था। उसकी कोकिलको लजानेवाली मधुर वाणी किसीको प्रिय न थी, कोई उसका सुनने-वाला न था। उसकी मनोहर गतिको देखनेवाला कामी, लोलुप पुरुषोंके सिवा और कोई न था। उसके रसीले नेत्र बहुतोंके हृदयमें शूल पैदा कर सकते थे, किन्तु प्रेम नहीं; क्योंकि वह अछूत थी।

वह अछूत थी। यही उसका दोष था। इसी कारण कोई उसे अपने पास न बिठलाता, कोई उसका आदर-सत्कार न करता, कोई उससे सहानुभूतिके दो शब्द न बोलता। उसको देखकर

पुरुप कहते—"आह! यदि किसी उच्च कुलकी होती" और स्त्रियाँ कहती—"अगर यह अछूत न होती", लेकिन मैं यह कभी न चाहता। मैं सोचता था कि यदि वह किसी उच्च जातिमें पैदा हुई होती, तो उसे इतना अभिमान होता, जिसका शतांश भी अब नहीं है। उसकी प्राकृतिक सुन्दरता वाह्य सजावटोंसे ढँक जाती। उसमें लज्जा थी, पवित्रता थी और सच्चरित्रता। वह कभी किसीसे इठलाती न थी, किसीसे बात न करती थी। जब वह आती-जाती, बहुतसे आदमी उसे देखकर गहरी साँसें लेते, तरह-तरहकी बातें करते, किन्तु वह चुपचाप चली जाती। उसके नेत्र ऊपर न उठते।

वह मुहल्लेमें मेरे घरको छोड़कर किसीके घर न जाती, और यदि जाती भी, तो बुलानेपर। उसमे आत्मिक गर्व था, यद्यपि वह अछूत थी। मेरे घर वह नित्य ही आती। मेरी माता और मौसीका व्यवहार बहुत अच्छा हो, सो नहीं, फिर भी वह मेरे घर अपना समस्त मान भूल जाती थी। आते-जाते वह एक नजर मुझे अवश्य देख लेती। यदि हमारी नजरें मिल जाती, तो वह शर्माकर भाग जाती। मुझे बैठकमें न पाकर वह भीतर आती। ईश्वर जाने उसके हृदयमें कैसे भाव थे, यह अवश्य था कि वह मुझे देखकर प्रसन्न हो उठती थी।

मेरा व्यवहार उससे सर्वथा पवित्र और सभ्य था। मैं उसको देखकर प्रसन्न होता था, किन्तु किसी बुरी नीयतसे नहीं। मैं उसको अछूत समझकर दूर न भागता था। मुझे उसकी दरिद्रतापर तरस आता था और उसके आत्मिक गर्वपर मुझे गर्व था। जब मैं अन्य मुहल्लेवालोंके उस नीच व्यवहारको

देखता, तो मेरे हृदयमें क्रोधका संचार होता था, और उसके विपरीत रूपाको उनकी कुवासनाओंपर कुठाराघात करते देखकर मैं हर्षसे फूल जाता था। मुझे रूपापर गर्व था।

कभी-कभी रूपासे मैं एक-आध बात कर लेता था। वह इसीमें सन्तुष्ट हो जाती थी। यदि कभी मैं उससे कोई काम करनेको कह देता, तो उसका मुख खिल उठता। वह तुरन्त ही दौड़ पड़ती और फौरनसे पेश्तर मेरा काम पूरा कर देती। कभी-कभी मैं उसकी सहायता करना चाहता था, किन्तु उसने कभी भी मुझसे एक पैसा न लिया। मुझे इसपर कभी-कभी खेद भी होता था, और उस समय और भी अधिक, जब मैं देखता कि मेरी माताकी दी हुई वस्तु वह सहर्ष स्वीकार कर लेती। फिर भी वह मेरी माता और मौसीसे बहुत डरती थी। कभी चौखटके भीतर पैर न रखती और यदि जाती भी, तो कोई चीज़ न छूती।

एक बार अकस्मात् जब वह घर लीप रही थी, उसका वस्त्र बर्तनोंकी चौकीसे लग गया। इसीसे मिले पानीके घड़े भी रखे हुए थे। मेरी माता यह देखते ही क्रोधसे चिल्ला उठी और एक लकड़ी उठाकर फेंक मारी। लकड़ी उसके कोमल पैरोंमें आकर लगी। खून निकल आया, किन्तु रूपाने एक शब्द भी न कहा। चुपचाप खड़ी हो गयी। उसका मुख मलीन हो गया और उसके नेत्रोंमें आँसू छलछला आये। मेरी माताका क्रोध फिर भी शान्त न हुआ। उन्होंने कहा—"तेरी आँखें फूट गयी थी। तू नहीं देखती कि सारे घड़े और बर्तन खराब हो गये?"

मेरी मौसी बोल उठीं—"और नहीं तो, रूपके गर्वमें अपने-को अछूत समझती ही नहीं।"

मेरी मा बोली—"आग लगे ऐसे रूपको। जा कलमुही, मेरे घरसे दूर हो।"

बेचारी रूपा लड़खड़ाती हुई चल दी। बाहर कमरेमें मैं बैठा पढ़ रहा था। उसके पैरसे रक्त बहता देखकर मैं पूछ बैठा—"रूपा यह क्या हुआ?" उसने धीमे स्वरमें उत्तर दिया—"बाबू, माजीने मारा है।" रूपा मुझसे कुछ छिपाती न थी।

मुझे क्रोध चढ़ आया। मैंने पूछा—"क्यो?"

रूपाने कहा—"मुझसे घड़े छू गये थे।"

मैं सहम उठा। जरासे दोषपर ऐसा दंड। क्या यह मनुष्य नही है? इसीलिए कि यह गरीब है, इसकी ओरसे कोई कुछ कहनेवाला नही? हायरे मनुष्यत्व!

मैंने फिर कहा—रूपा, मेरी माताके इस कसूरको क्षमा करना।"

रूपा—"राम राम, बाबू, आप क्या कहते हैं! वे मेरी माकी तरह हैं। क्या मा अपनी बेटीको कभी नही मारती?"

मैं—"लोग क्या कहेगे?"

रूपा—"लोगोंको मालूम ही क्यों होगा?"

इतना कहकर वह चली गयी। मेरे नेत्रोंसे दो बूँद आँसू निकलकर किताबपर गिर पड़े। हृदयने चिल्लाकर कहा—'क्या यही अछूत है?'

मेरी माने वे घड़े फिकवा दिये। सारे बर्तनोंमें आग डाल-

कर उन्हे पवित्र किया गया। मैंने मासे कहा—"अम्मा, रूपाके छूनेसे वर्तन भी छूत हो गये ?"

मा (गुस्सेसे)—"जा, तेरे लिए न हुए होंगे, मेरे लिए तो छूत हैं।" मैं वाहर चला आया। मेरे हृदयमे एक आग थी, जो सारे शरीरको जला रही थी। आँसुओंकी जल-धारा भी उसे शान्त न कर सकी।

दूसरे दिन रूपा पहलेहीकी भाँति मेरी वैठकके सामनेसे निकली। मैंने देखा, उसके पैरमे पट्टी वँधी है। वह कुछ लॅगड़ा रही है। मुझे अपनी ओर ताकते देखकर उसने लॅगड़ाना छोड़ दिया, पर वह अपने दर्दको मुझसे न छिपा सकी। उसने मेरी ओर देखकर मुसकरा दिया। मेरे हृदयमे ठेस-सी लगी। चोट खाने और असीम दुःख भोगनेपर भी वह अपने क्लेशको मुझसे छिपाना चाहती थी। ओफ! कैसी सहनशीलता, कैसी उदारता और कितनी क्षमता थी !

इन्ही दिनों उसका पिता रोग-शय्यापर पड़ गया। वुखार और जूड़ीने उसे कमजोर बना दिया। रोजकी मजदूरी और कठिन परिश्रमसे पेट भरनेवाला मनुष्य यदि वीमार पड़ जाय, तो उसकी क्या गति होती है, यह बात हमलोगोंके अनुमानमें ही नहीं आ सकती। चार-छै दिनतक तो किसी-न-किसी प्रकार काम चलता रहा, फिर फाकोंकी नौवत आयी। हींगूकी वीमारीका हाल मुहल्लेवालोंसे छिपा न था, न उसकी दरिद्रता और कठिनाइयाँ ही छिपी थी, फिर भी किसीने उस गरीबके घर जाकर उसका हाल न पूछा। मैं अवश्य उसके घर दिनमे दो वार जाता था और दवा आदिका भी प्रबन्ध कर देता। रूपा

बेचारी इतनी शर्मीली थी कि वह अपने पिताके लिए दवा भी न ला सकती थी।

रूपा और हींगूपर मेरे इस व्यवहार और सहानुभूतिका बड़ा गहरा असर पड़ा। बेचारा हींगू मुझे सैकड़ों दुआएँ देता, मेरी इस सहानुभूतिके लिए मुझे सराहता, किन्तु रूपा मुँहसे एक शब्द भी न निकालती। वह चुपचाप मुझे देखा करती। कभी-कभी उसके नेत्रोंसे कृतज्ञताके आँसू भी ढुलककर उसके सुन्दर कपोलोंको भिंगो देते थे। मैं उसकी इस मूक कृतज्ञतासे जितना मर्माहत होता था, उतना कदाचित् जीवनमें और कभी नहीं हुआ। बीमारीके छठे या सातवें दिन मैं नित्यकी तरह रूपाके घर गया। हींगू उस दिन बेहोश था। रूपाको मैंने हींगूकी चारपाईके पास बैठे रोते पाया। मुझे देखते ही उसने आँसू पोंछ डाले, और कहा—"बाबूजी, आज तो दादाकी हालत बड़ी खराब है। सुबहसे होश ही नहीं है।" मैंने कहा—"रूपा, फिर मुझे बुला क्यों नहीं लिया?"

रूपाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उसने कहा—"बाबूजी, मैं माजीको डरती हूँ, और यह भी खयाल रहता है कि मुहल्लेवाले तुम्हारी हँसी न उड़ावें। मैं तो नीच हूँ, मेरी बदनामी क्या?" यह कहते-कहते फिर रोने लगी।

मैंने हृदयमें विचार किया—'रूपा, तुम नीच होकर भी लाखोंसे ऊँची हो। तुम्हारे विचार जितने प्रशंसनीय हैं, उतने ही औरोंके घृणित। तुम देवी हो।' फिर प्रत्यक्षमें कहा—"रूपा, मुझे तो तुम्हारी बदनामीका ख्याल है, नहीं तो दिन-भर यहीं रहता। मैं नहीं चाहता कि तुमपर आँच आये।"

अब रूपा जोरसे रो पड़ी। मैंने उसे बहुत समझा-बुझाकर शान्त किया। जब मै दवाके लिए जाने लगा, तो उसने मुझे रोककर मेरे हाथमें अपना चाँदीका एक जेवर रख दिया, और कहा—"बाबूजी, इसे जिस तरह चाहो, बेचकर मुझे रुपये ला दो। आज घरमें एक दाना भी नही है।"

मेरे नेत्र डबडबा आये। मैंने काँपते हुए स्वरसे कहा—"रूपा, मेरी आज्ञा, विनती जो कुछ समझो, मानो। यदि तुम्हें मेरा जरा भी खयाल है, तो जबतक मैं न कहूँ, अपनी चीजें मत बेचो। मैं जबतक मुझसे हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करूँगा, फिर जो ईश्वरकी इच्छा हो।" रूपाका कुछ कहनेका विचार देखकर मैंने पुनः कहा—"रूपा, तुमने मुझसे कभी भी सहायता नही ली। आज इनकार करनेसे मुझे बहुत दुःख होगा।"

रूपा रुक गयी। उसने मुँहसे कुछ न कहा, केवल मेरी ओर देखती रही। उसके सारे विचार उसके नेत्रोंसे प्रकट होने लगे। आँखोंमे कृतज्ञता थी और अधरोंपर एक क्षीण दुःखभरी मुसकराहट। मैंने जेवर वापस कर दिया और जेबसे पाँच रुपये निकालकर उसके हाथमें रख दिये। उसने एक गहरी साँस ली और पिताके पास बैठ गयी।

दो हफ्ते बीत गये। फिर भी हींगूका बुखार न छूटा। मैं कुछ-न-कुछ लुका-छिपाकर रूपाको दे देता। डर था, कहीं मुहल्लेवाले इसमें भी कोई माने पैदा न कर दें। एक दिन मैंने मुहल्लेके कुछ सज्जनोको एकत्रित किया और उनसे कहा—'देखिये हींगू बहुत दिनसे बीमार है, उसकी सहायता करनी चाहिए। बेचारा भूखो मर रहा है।"

एक सज्जन पूछ बैठे—"आपहीको इतनी फिक्र क्यों है ?"

मैंने उत्तेजित होकर कहा—"मनुष्यत्वके ख्यालसे।"

कुछ लोग मुसकरा दिये। उनकी उस मुसकराहटमें अविश्वास था। मैंने अब समझा कि इन नीच पिशाचोंसे सहायता मांगकर मैंने उस पवित्र आत्माको कलंकित किया।

मैंने फिर कुछ न कहा। चुपचाप उठ खड़ा हुआ। मुझे जाते देखकर एक वृद्ध सज्जनने कहा—"भाई सुनो, कोई अपना हो तो उसकी सहायता भी करें। हमलोग एक अछूतके पीछे अपना रुपया फेंकने नहीं जाते।"

मैंने हृदयमें कहा—'वाह री पशुता !'

दो-एक सज्जनोंने थोड़ी-थोड़ी सहायता की, किन्तु यह स्पष्ट था कि वे दबावमें पड़कर अपना रुपया यों फेंकनेको उद्यत हुए हैं।

मेरे हृदयमें मनुष्य-जातिको अपमानित करनेवाले इन नर-पिशाचोंसे घृणा-सी हो गयी। मैंने समझ लिया कि वे स्वार्थके जीते-जागते पुतले हैं, किन्तु फिर भी वे उच्च कुलके हैं और रूपा अछूत है !

तीन हफ्ते बीत गये। हींगू अभीतक चारपाईपर पड़ा था, किसीने उसकी खबर न ली, किसीने एक कौड़ीकी भी सहायता न दी। एक दिन मैंने देखा, रूपा अपनी बाहरकी कोठरीमें बैठी रो रही है। मुझे देखते ही उसने और जोरोंसे रोना शुरू किया। मैंने सान्त्वना देते हुए पूछा—"रूपा क्या है, इतनी अधीर क्यों हो ?" मैंने फिर सब हाल बतलानेके लिए जोर दिया। अन्तमें उसने बतलाया कि मुहल्लेके एक सज्जनने उसे खाना देनेके बहाने बुला भेजा, और एकान्तमें पाकर उससे

अति नीच प्रस्ताव किया, तरह-तरहके प्रलोभन दिये; किन्तु उस अछूत बालिकाने उसकी समस्त आशाओंको ठुकरा दिया। हाय रे दुर्भाग्य ! संसारमें ऐसे भी नीच और कृतघ्न मनुष्य हैं, जो दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेके बदले और भी उन्हे सताते हैं, और फिर उच्च कुलके बनते हैं। एक असहाय बालिकाके साथ ऐसा व्यवहार !

मुझे दुःखित और क्रुद्ध देखकर रूपाने मुझसे कहा—'बाबूजी, आप दुःखी न हो, यह मेरे पिछले कर्मका फल है, नहीं तो मैं अछूत जातिहीमें क्यों पैदा होती ? भला, अछूतके साथ और कैसा वर्ताव होता है ?

मैंने कहा—"रूपा, मैं इस अपमानका बदला लिये विना नहीं रह सकता।"

रूपाने गम्भीर होकर कहा—"नहीं बाबूजी, आप किसीसे कुछ कहियेगा नहीं, उनकी इज्जतमें बट्टा लग जायगा। मेरी विनती मानकर आप चुप रहिये।"

मैंने कहा—"रूपा, तुम देवी हो।"

रूपाने मुसकराकर कहा—"वाह-वाह, आप कैसी बातें करते हैं ? भला, मेरी-सी अछूत भी कही देवी होती है ? मैं तो देवियोंके पैरकी धूल भी नहीं छू सकती।"

धीरे-धीरे मेरा रूपाके घर आना-जाना सबको मालूम हो गया। मुहल्लेमे इसपर तरह-तरहकी आलोचनाएँ होने लगीं। एकने कहा—'इसीलिए हजरत हींगूकी सहायताके लिए इतना जोर दे रहे थे। मुझे पहले ही कुछ-न-कुछ शक हो गया था।"

दूसरेने कहा—"और नहीं तो क्या, तुमने उनको ऐसा परोपकारी समझ लिया था ?"

तीसरा बोला—"अजी, रूपाके जालमे फँसे हैं ! है भी तो रूपकी पुतली ।"

अबकी उन्हीं सज्जनने, जिन्होंने रूपासे वह घृणित प्रस्ताव किया था, कहा—"वाह ! रूपकी पुतली भले ही हो, लेकिन है तो अछूत । उसे कौन हिन्दू छूकर भी अपनेको पवित्र समझेगा ? यह नयी शिक्षाकी बलिहारी है कि युवकोंने सुन्दर मुख देखा और फिसल पड़े । उन्हें यह विचार ही नही कि वह छूत है या अछूत । अब सारा धर्म लोप हो गया ।"

हिन्दूधर्मके किसी अन्य कट्टर अनुयायीने कहा—"अभी क्या है, कुछ दिनोंमे लोग अछूतसे खुल्लमखुल्ला विवाह करेंगे । अब जो न हो, सो थोड़ा है । इन्ही नवयुवको और जात-पाँतके विरोधियोंके कारण सारी हिन्दूजाति रसातलको चली जायगी ।"

ऐसी अनेकानेक बातें मेरे कानोंतक पहुँचने लगी । मैंने दिलमे कहा—'वाह रे पाखंडियो ! मुखमें राम-राम और हृदयमें ऐसी नीच वासनाएँ, ऐसे कुत्सित विचार, ऐसी घृणित अभिलाषाएँ ! फिर भी धर्मावलम्बी होनेका गर्व ।"

मेरी मातासे भी ये बातें छिपी न रहीं । उनके क्रोधका पारा चढ़ गया । उन्होने एक दिन मुझसे कहा—"क्योंरे ज्ञानू, तू इतना निर्लज्ज हो गया है कि मुहल्ला-भर तुझको थूकता है और तू ध्यान ही नहीं देता । बता यही अंग्रेजी पढ़नेका नतीजा है ?"

मैंने कहा—"मा, मैं खुद मुहल्लेके इन वगुला भगतोंको घृणा-की दृष्टिसे देखता हूँ। यदि मैं उनकी बातें तुम्हे वताऊँ, तो तुम अचरज करोगी, फिर भी वे मुझपर दोष लगाते हैं। मुझे किसीकी कही हुई अच्छी या वुरी वातोंकी जरा भी परवाह नहीं है। मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगा। अछूतकी सेवा करके अपनेको पुण्यवान समझूँगा।"

माको मेरी वातोंसे दुःख हुआ; किन्तु मैंने निश्चय कर लिया था कि इस विषयमें किसीकी एक न सुनूँगा। रूपाकी पवित्र मूर्ति हर समय मेरे नेत्रोंके सामने नाचा करती और मेरा मन उत्साहसे भर देती। उसकी मुसकराती हुई सुन्दर मनोहर प्रतिमा सदा मेरे हृदयमें रहती।

मैं उसे अछूत ही न समझता था। वह साक्षात् देवीकी मूर्ति थी। कुछ समयकी लगातार दवासे हींगू अच्छा हो गया। अव वह फिर अपना पुराना काम करने लगा। दिनभर मेहनत मजूरी करके कुछ पैसे लाता और उसीसे अपना पेट पालता। फिर भी वह मेरा ऋण चुका देना चाहता था। कुछ दिन वाद रूपाने चुपकेसे लाकर मेरे हाथमे दो रुपये रख दिये। मैंने पूछा—"रूपा, यह रुपये कैसे ?"

उसने उत्तर दिया—"वावूजी, आपने दादाकी वीमारीमें वहुतसे रुपये दिये थे, वही हैं। धीरे-धीरे और भी चुका दूँगी।"

मैंने रूपाका हाथ जीवनमें पहली वार अपने हाथमें लेकर कहा—"रूपा, तुम मुझे गैर समझती हो, इसीसे तो उन रुपयोंका ध्यान तुम्हें वना है। देखो, अव कभी रुपयेकी वात न करना, नहीं

तो मैं नाराज होऊँगा। जाओ, इन रुपयोंसे अपने लिए धोती मँगा लो, फटी पहने हो।"

रूपाने मेरे ऊपर कृतज्ञता और प्रेमसे भरी एक दृष्टि डाली। मुक्ताको लज्जित करनेवाला एक गोल अश्रु उसके गालपर ढुलक आया। मैंने सोचा—"क्या इसके हृदयमें प्रेमका साम्राज्य है?"

× × ×

चार ही महीने बाद शहरमें हैजा शुरू हुआ। पहले तो शहरके एक किनारेके मुहल्लेमें कुछ लोगोंको हैजा हुआ, पर शीघ्र ही वह और मुहल्लोंमे भी फैलने लगा। लोगोंने शहर छोड़-छोड़कर भागना शुरू कर दिया। बहुतसे आदमी तो शहरके बाहर बागोंमे जा-जाकर रहने लगे। बहुतोंने बाल-बच्चोंको दूसरे शहरमें भेज दिया और स्वयं किसी दूर गाँवमें जा बसे।

अभीतक मेरा मुहल्ला बचा था। मेरे मुहल्लेके इर्द-गिर्दके मुहल्ले भी बचे थे, इसीसे हमलोग निश्चिन्त थे। एक दिन सुबह उठते ही खबर मिली कि मेरे मुहल्लेसे मिले हुए मुहल्लेमें एक आदमीको कै-दस्त आने लगे। सारे मुहल्लेमें खलबली मच गयी। कोई कहता—"अब यहाँ रहना बुद्धिमानी नहीं।" तो दूसरा कहता—"मैं तो कल ही दूसरी जगह चला जाऊँगा।" दो-एक वयोवृद्ध सज्जनोंने कहा—"भागनेसे क्या मौत छोड़ देगी? यदि मरना है, तो किसी जगह भी खैर नहीं।"

माने कहा—"ज्ञानू, देख दो-एक रोज और ठहरकर बनारस चलनेका प्रबन्ध कर ले। कालेजसे छुट्टी ले लेना!"

मैंने—"अच्छा"—कहकर माको शान्त किया। उसी दिन

रूपा मेरे घर आयी। मैंने उससे पूछा—"रूपा, तू कहाँ जायगी? मा तो बनारस जानेको कहती हैं।"

रूपा किंचित् मलीन होकर बोली—"बाबूजी, बड़ा अच्छा है, तुम चले जाओ। मैं गरीब भला कहाँ जा सकती हूँ?"

मैंने कहा—"किसी दूसरेहीके साथ जा बसो।"

उसने उत्तर दिया—"बाबूजी, अछूतको अपने साथ कौन रखेगा? रहे नातेदार, सो मेरे कोई है ही नहीं।"

मैंने नीची दृष्टिसे देखते हुए पूछा—"मेरे साथ चलोगी?"

रूपाका सुन्दर मुख हर्षसे चमक उठा, किन्तु उसने जवाब दिया—"नही।"

मैंने चकित होकर पूछा—"क्यों?"

उसने रुँधे हुए गलेसे कहा—"बाबूजी, तुम ऐसे ही क्या कम बदनाम हो, जो मैं तुम्हें दुनियाकी आँखोंमे और भी गिरा दूँ। मुझे मरना होगा तो यहीं तुम्हारा नाम लेकर प्राण दूँगी।"

मैंने बहुत आग्रह किया, किन्तु उसके मुखसे 'नहीं' के सिवा और कुछ न निकला। अन्तमें झुझलाकर मैंने कहा—"तो मैं भी नहीं जाऊँगा।"

इतना सुनते ही रूपा घबरा उठी। उसने गिड़गिड़ाकर विनती करनी शुरू की। आखिरकार मुझे उसकी बात माननी पड़ी। हाँ, मैंने भी उससे शपथ ले ली कि यदि किसी तरहका भी उसके ऊपर दुःख पड़ेगा, तो वह मुझे तुरन्त ही चिट्ठी लिखेगी।

मेरा मुहल्ला खाली होने लगा। मैं भी जानेका प्रबन्ध करने लगा, परन्तु मेरे भाग्यमें तो कुछ और ही बदा था। शाम-

की गाड़ीसे जानेका निश्चय हुआ था, पर अभाग्यवश दोपहरहीसे मेरी माको दस्त आने लगे। मै घबरा उठा, डाक्टरको लाकर दिखलाया। दौड़धूप करने लगा। मेरा सहायक कोई न था। मुहल्लेके बचे-खुचे आदमी भी मेरी माका हाल सुनकर भाग खड़े हुए। मेरी मौसीतक चल दीं। आज मुझे मालूम हुआ कि संसारमे अपना कोई नही। दुःखके समय कोई किसीका नहीं होता, अपने भी पराये हो जाते हैं। जिस सम्बन्धीको बुलाता; वही कोई-न-कोई बहाना निकाल लेता। अन्तमे हताश होकर बैठ रहा। सारा संसार अन्धकारमय प्रतीत होने लगा।

किन्तु इस अन्धकारको भेदकर एक उज्ज्वल किरण मेरी निराशाको आशामें परिणत करने लगी। वह उज्ज्वल किरण थी रूपाकी सहानुभूति। जब संसारके और सब सहारे टूट गये, जब अपमानोंने साथ छोड़ दिया, इस असहाय अछूत बालिकाने आकर मुझे उबार लिया। रूपाने आकर मुझसे कहा—"बाबू घबराते क्यों हो? मैं तो जिन्दा हूँ, माजीकी सेवा मैं करूँगी। केवल माजीसे आज्ञा ले लो।"

मैंने मासे पूछा। भला, कही दुःखमे भी कोई सहायतासे इनकार करता है। माने कहा—"ज्ञानू, रूपाको बुला लो। जब अपनोंने साथ छोड़ दिया, तब वहीं अपनी है।" मैंने सोचा—'भगवान धन्य हैं, सबका गर्व चूर करते हैं। जो रूपाकी परछाईंसे भागती थीं, वही आज उसका दिया हुआ पानी पीनेको राजी हैं!'

रूपाने आकर माकी जी-जानसे सेवा शुरू की। माकी कै और दस्तको साफ करती, उनके कपड़े बदलती, उनपर बराबर पंखा

झलती। रात-भर वह माकी चारपाईके पास बैठी रही, एक क्षण भी न सोयी। माने रातमें उससे कहा—"बेटी रूपा, तुम देवी हो, मेरा कसूर माफ करना।"

रूपाके नेत्रोंमे पानी भर आया। उसने कहा—"माजी, आप उन बातोंका विचार छोड़ दीजिए। मैं तो आपकी सेवा करना आपका धर्म समझती हूँ।"

दूसरे दिन माकी हालत सुधर गयी, पर अभी मेरे दुःखोंका अन्त दूर था। माके अच्छे होते ही मुझे हैजेने धर दबाया। मेरी मा अभी चल फिर भी न सकती थीं, इसलिए मेरी देख-भालका भार भी रूपाहीपर पड़ा। रूपा जी-जानसे लगी थी, उसे अपनी जरा भी परवाह न थी। डाक्टर साहब दिनमें तीन बार आते। दवा आदिका सारा प्रबन्ध हीगू ही करता। वह बेचारा दिन-भर मेरी बैठकमें ही बैठा रहता। जरा-सी आवाज देते ही भीतर आ जाता। एक बार मेरी माताको रोती देखकर उसने कहा—"माजी, आप रोती क्यों हो? बाबूने मेरे साथ जो भलाई की है, उसका करजा हमलोग जान देकर चुका नहीं सकते।"

मेरी माने कहा—"भैया, मुझे तो अब तुम्हारा ही सहारा है।"

रातको मेरी तबीयत कुछ ज्यादा खराब थी। मैंने रूपासे अपने सिरहाने बैठनेको कहा। उसने मुझे बेचैन देखकर मेरी आज्ञा मान ली। मैंने आँखें खोलकर उसकी ओर एक बार देखा। आँसूके दो बूँद निकल पड़े। रूपा मेरे आँसू पोछते हुए बोली—"बाबूजी, इतना घबराते क्यो हो? सुबहतक तबीयत ठीक हो जायगी।"

मैंने कहा—"रूपा, तुमने जो हमलोगोंकी इतनी सेवा की इसका ऋण मैं न चुका सकूँगा, इसीसे इतना बेचैन हूँ।"

रूपाने कहा—"बाबूजी, अभी इसकी चिन्ता न करो, नहीं तो तबीयत और भी खराब हो जायगी।"

मैंने आँखें बन्द कर लीं। रूपा मेरा सर दाबने लगी और मैं सो गया। मैं नहीं जानता कि कबतक सोया, लेकिन जागनेपर रूपाको उसी तरह बैठी पाया। एक हाथ उसका मेरे सरपर था और दूसरेसे वह पंखा झल रही थी। मेरा जी हल्का था। डाक्टर साहबने आकर देखा, तो खुश हो गये। दो रोजमें मैं उठने बैठने लगा। तीसरे दिन जब हमलोग जानेका विचार कर रहे थे कि रूपाको एक कै हुई। मैं घबरा उठा। शीघ्र ही डाक्टर साहब आये, दवा होने लगी, परन्तु रूपाको कुछ लाभ न हुआ। दस्तपर दस्त और कैपर कै होने लगीं।

डाक्टर साहबका मुख भी मलीन था। आशाकी क्षीण रेखा भी विलीन होती जाती थी। रातको रूपा बेहोश हो गयी। मैं उसका सर अपनी गोदमें रखे बैठा था। मेरे नेत्रोंसे रह-रहकर आँसुओंकी धारा बह रही थी। मेरी माको रोती देखकर हीगूने कहा—"माजी रोनेसे क्या फायदा? रूपाने अपना और मेरा करजा चुका दिया। मुझे तो कुछ भी रंज नही। यदि मेरा भी तन बाबूके काम आ जाय तो और भी खुशी हो।"

इतना कहकर वह चला गया। मा भी ऊपर जाकर रोने लगी। कुछ क्षण पश्चात् रूपाने नेत्र खोले और मुझे देखकर कहा—"बाबूजी, अब मैं जाती हूँ। मुझे भूल मत जाना।"

मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। मैंने बड़ी

कठिनाईसे कहा—"मेरी रूपा !" इससे अधिक मैं कुछ न कह सका। मेरा गला भर आया। मैंने अपना मुख उसके मुख-पर रख दिया और फिर कहा—'मेरी रूपा !'

रूपाने धीमे स्वरमें कहा—"मेरे बाबू !" और फिर उसके नेत्र सदाके लिए बन्द हो गये।

× × ×

सारा संसार अन्धकारमय हो गया। उसी अवस्थामें मैंने रूपाकी मृतक देहपर हाथ रखकर जीवन पर्य्यन्त अविवाहित रहने और अछूतोद्धारमें तन-मन अर्पण करनेकी शपथ खायी।

दिवाली और होली

इलाचन्द्र जोशी

आज भ्रातृ-द्वितीयाके बादकी तीज है। तीन दिनतक कामकी भीड़ थी। आज अवकाशका दिन है। प्रातःकालके कामोसे छुट्टी पाकर, सबको खिला-पिलाकर स्वयं खा-पीकर अपने कमरेमे चारपाईपर बैठकर खिड़कीसे बाहरका दृश्य देख रही हूँ। सूरज अभीसे पश्चिमकी तरफ ढलने लगा है। प्रायः दो बज गये होंगे। सारा घर सूना पड़ा है। घरके सब पुरुष अपने-अपने कामोंपर गये हुए हैं। सास, देवरानी और जेठानी बाहर आँगनमें बैठी धूप खा रही हैं। मेरा सात सालका लड़का लल्लन अपने छोटे-से पलँगपर लेटा हुआ मेरी सुध भूल गया है और नींदकी दुनियामें न-जाने किस मायावतीकी गोदमें खेल रहा है। उसकी आँखोमें और अधरोपर कैसी मीठी हँसी लहरा रही है! कौन हो तुम, मेरे लाल! किस दुनियासे भटकते हुए आकर मेरी

छाती जकड़कर व्याकुल स्नेहसे मुझे प्रतिपल रुला रहे हो! केवल तुम्हारे ही कारण मैं इस नीरस कर्म-चक्रमें पिसनेपर भी नहीं मर रही हूँ। नहीं तो······पर आज तुम सोओ। आज कुछ देरके लिए तुम्हें बिलकुल भूल जानेकी इच्छा हुई है।

शरत्कालके दिन भी कितने छोटे होते हैं। अभी दो ही बजे होंगे, पर अभीसे सन्ध्याका-सा आभास होने लगा है। नीचेके पहाड़ी खेतोंकी फसल सब काट डाली गयी है। तीन-चार गायें उनके सूखे डण्ठलोंको ही चूस रही हैं। एक स्थानपर ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जमीनकी पगडण्डीसे होकर तीन अलबेली कृषक-रमणियाँ सरपर घासका गट्ठर लिये कवायदकी तरह समान चालमें चली जा रही हैं। वे प्रसन्न-चित्त हैं। हँसती जाती हैं और बोलती जाती हैं। हमारे मकानसे वे काफी नीचेपर हैं, पर आजकी इस झिल्ली-झंकृत एकान्त शान्तिमे उनके सुख-दुःख-की बातें स्पष्ट सुनायी दे रही हैं। गाँवमें पहुँचते पहुँचते उन्हें सन्ध्या हो जायगी और अपनी गायों और भैंसोंको घास खिलाकर, उन्हे दुह करके अंगीठी बालकर कुछ देर तापेंगी, और तब चूल्हेमें रोटियाँ सेककर खा-पीकर दो-चार मिनट गपशप करके सुखपूर्वक सो जायँगी—इन नवेलियोंके बाल-बच्चे शायद नही होंगे, इसलिए इस चिन्तासे मुक्त होनेके कारण मधुर मोहमें मग्न होकर दूसरे दिन उठेंगी और हँसते-हँसते काम करेंगी और काम करते-करते हँसेंगी। उन्हें देखकर हमें ईर्षा होती है।

आकाश निर्मल-नील, परिष्कार-परिच्छन्न है। निस्तेज, सुनहली धूपकी छायासे, सामने पच्छिमकी तरफके पहाड़ किस दुःखके कारण पीले पड़ गये हैं? और झीगुरोंका यह निरन्तर

झङ्कार ! न मालूम क्यों उसे सुनकर मुझे आज जान पड़ रहा है कि मैं अकेली हूँ, इस संसारमें एकाकिनी, सङ्गीहीन हूँ। कहाँ गया मेरा साथी ? आज अनेक दिनोंके बाद जब गिरस्तीके पचड़ेसे कुछ अवकाश मिला है, तो मेरे निभृत हृदयमें धीरे-धीरे किसकी स्मृति जागरित हो रही है ? हाय मेरे प्यारे ! समझती थी कि तुम्हें भूल गयी हूँ, बचपनका साहचर्य क्षणिक स्वप्न-सम जान पड़ने लगा था। मैं पति-पुत्रको लेकर अपनी गिरस्तीके जञ्जालमें फँस गयी और तुम इधर-उधर भटकते फिरते रहे हो। तुम्हारी याद ही मुझे नहीं थी। पर परसों महालक्ष्मीकी पूजाकी रात अपनी शीर्ण, रुक्ष मूर्ति लेकर सपनेमें तुम अचानक कहांसे आकर दिखायी दिये ! प्रेतात्माकी तरह तुम्हारा मुख देखा। गालोंकी हड्डियाँ बाहरको निकल गयी थीं; आँखें नीचे धँस गयी थीं, तैलहीन, बिखरे हुए बालोंसे चेहरा थोड़ा-बहुत ढक-सा गया। पर चिर-परिचित उद्दीप्त आँखोंसे वही प्रखर, उद्दाम ज्योति विकीरित हो रही थी। व्याकुल वेदनासे मैं सपनेमें रो पड़ी और दोनों बांहोंसे तुम्हें जकड़कर कुशल-समाचार पूछने लगी। जब आँख खुली तो एक मर्मगत मीठी वेदनाकी लहर समस्त हृदय और शरीरमें व्याप्त हो गयी। अपना सारा अस्तित्व ही मुझे झूठा जान पड़ने लगा और क्षणिक स्वप्नमें जो परम सत्य प्राप्त हुआ था, उसे खोनेके कारण हृदयको पागलकी तरह पत्थरपर पछाड़ खानेकी इच्छा हुई। दूसरे दिन गोवर्द्धन-पूजा थी और कल भ्रातृ-द्वितीया। कोई भाई न होनेके कारण दूज विफल गयी। कई बाते स्मरण होकर हृदयको रुला रही थीं, पर कामकी भीड़के कारण रोनेका

समय नहीं था। आजके अवकाशमय दिनमे रह-रहकर वही स्मृतियाँ फिर आलोड़ित हो रही हैं। लल्लनका अस्तित्व ही आज, न मालूम क्यों मेरे लिए झूठा हो गया है। केवल तुम्हारी ही स्मृति चरम सत्यके रूपमे मेरे मनमें विभासित हो रही है, और मैं अपनेको चिर-किशोरी, चिर-कुमारी समझकर हम दोनोके वाल्यकालके आनन्दमय जीवनके विस्मृत लोकमे कल्पना-के साथ लौट चली हूँ।

आज अतीतके एक विशेष दिनकी अस्पष्ट स्मृति मेरे हृदयमें झिलमिला रही है। न मालूम क्यो। क्योकि वह दिन मेरे जीवनकी किसी विशेष घटनासे सम्बन्धित नहीं है। कितने ही महत्वपूर्ण दिनोकी स्मृतियोंको आवृत करके वह साधारण दिन अपनी सुखाल समय छायासे मेरे मानसमे लहरा रहा है। दो दिन पहले वर्फ गिर चुकी थी; उस दिन सुवहको सारी प्रकृति कुहरेसे ढकी हुई थी; पर दिनको कुहरा न...गया था और आकाशकी प्रगाढ़ नीलिमा आयनेसे भी अधिक निर्मल दिखलायी देती थी। इर्द-गिर्दके पहाड़ बर्फसे ढके हुए होनेके कारण धूपमें स्फटिकके समान चमक रहे थे। हमारे गाँवके अधिकांश स्थानोंपर वर्फ पिघल गयी थी; पर यत्र-तत्र अब भी मौजूद थी। धूप कैसी प्यारी लगती थी! पैनी छुरीसे भी तीखी हवाके झकोरे समस्त वायुमण्डलको पवित्र, पापकी कल्पनासे निर्मुक्त कर रहे थे। सारी प्रकृति निष्कलङ्क किशोरी कुमारकी तरह स्निग्ध, उज्ज्वल रूपमें शोभित हो रही थी। अपने कैशोर हृदयसे मै उस दिन प्रकृतिका साम्य अनुभव कर रही थी। विपुल जीवनकी कैसी रङ्गीन कल्पनायें, कैसी दीप्त आशायें मेरे हृदयमें हिलोरे मार

रही थीं ! क्यों जीवनके प्रातमें असीम, उद्दाम आशाओं, उद्वेल आकांक्षाओंका अंकुर लहलहाने लगता है और यौवनका उत्ताप छूते-न-छूते शुष्क तृणकी तरह धूलिमें लुण्ठित हो जाता है ? सत्वर सन्ध्या हो आयी, गायें गोठोंकी ओर लौट चलीं, कृषक रमणियाँ कतार बाँधकर सुख-दुःखकी बातें करती हुई, पहाड़ी गीतका मस्ताना राग गाती हुई, हँसती, खेलती हुई अपनी-अपनी विश्राम-कुटीको वापस जाने लगीं। पर्वतोंकी तुषार-मण्डित स्फटिक शिलाओंपर सुनहली धूपकी छाया किस मायाका जाल बिछा रही थी ! कैसी मीठी उदासीसे मेरी सर्वात्मा रञ्जित हो गयी थी ! जिसको लेकर मेरी आनन्दोज्ज्वल आशाओंका प्रवेग उच्छ्वलित हो रहा था, वह आज अभीतक नहीं आया था। उसकी बाट जोहते-जोहते मैं निराश हो गयी, पर आजकी इस निर्मल, निर्मुक्त सन्ध्यामें इस निराशामे भी कितना सुख था ! उस दिनकी छोटी-से-छोटी बात भी मुझे एक-एक करके याद आ रही है। गाँवमे हमारे घरके पास ही बाँसका एक छोटा-सा बन था और उसके पास ही पीपलका एक बड़ा पेड़। उसपर बसेरा लेनेवाले कौवोंकी कलकल ध्वनि मुखरित होने लगी थी। कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था, पर मैं बाहरकी ओर ही टकटकी लगाये थी। दादीने भीतरसे पुकारकर कहा—"विन्दी अंगीठी तैयार है, भीतर आकर तापती क्यों नहीं ? सर्दीसे बीमार पड़ जायगी।" पर मेरा ध्यान ही इस लोकमें न था। धीरे-धीरे अंधेरा बढ़ता चला गया। पर मनमोहन भैया न आये। जब बाहर अन्धकारके कारण कुछ भी न दिखायी दिया, तो हताश होकर मैं भीतर लौट चली। अभिमानके कारण रोनेकी इच्छा

होती थी। अंगीठीकी गरमीसे शरीरके साथ ही हृदयको भी कुछ सांत्वना मिली। दादीसे कहा—"आज कोई भूतकी कहानी सुनाओ।" "चुप पगली, रात-भर सपनेमें भूत दबायेंगे।" "नहीं, नहीं दबायेंगे, तुम कहो। मैं नहीं मानूँगी। लाचार होकर दादीने भूतके सम्बन्धमे अपने अनुभवके सच्चे किस्से कहने आरम्भ किये। मैं उत्सुक होकर किस्से सुनने लगी, पर बीच-बीचमें अन्यमनस्क हो जाती थी सोचती थी, ऐसे अच्छे किस्से यदि मोहन भैया भी सुन पाते। फिर सोचा—"अच्छा हुआ, उन्होंने नहीं सुना। मेरा क्या बिगड़ा। मैं मजेमें कहानियाँ सुन रही हूँ। उन्हींको नुकसान हुआ।" पर दादीने दो-एक ऐसे भयङ्कर किस्से कहे कि मैं मोहन भैयाकी बात ही भूल गयी और भयके कारण दादीके शरीरसे चिपट गयी।

रातको सपनेमें भूत नहीं देखा। जिसे देखा उसे देखकर त्रिभुवनमें मेरे लिए भयका अस्तित्व ही नहीं रह सकता था।

दूसरे दिन मोहन भैया सवेरे ही हमारे यहाँ आ पहुँचे। हाथमें एक रङ्गीन किताब थी और हँसमुखमें रङ्गीन छाया। उन्हें देखकर प्रसन्न होना स्वाभाविक था, पर उनके चेहरेकी प्रसन्नता देखकर मन-ही-मन जल उठी, निश्चय ही इस रङ्गीन पुस्तकके साहचर्यमें उन्होंने कल सारा दिन बिताया होगा। यह किताब क्या मुझसे बढ़कर है ?

"देखो बिन्दी, कैसी अच्छी तसवीरें हैं! तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

मेरे लिए! मैं पलमें सारा अभिमान भूल गयी। अकपट

आनन्दसे मैंने पुस्तकके लिए हाथ बढ़ाया और खोलकर देखने लगी। छोटे-छोटे बच्चोंके लिए लिखी गयी अंग्रेजीकी कहानियोंकी किताब थी। पूछा—"कहाँसे लाये ?"

"मिस हम्फ्रेने मुझे दिया है।"

मिस हम्फ्रे एक मिशनरी महिला थी। गाँवके पास ईसाइयोकी एक छोटी बसासत थी। वह वहाँकी लड़कियोंके एक कानवेण्टकी अध्यक्षा थीं। उनका स्वभाव अत्यन्त मधुर और स्नेहपूर्ण था। अंगरेज होनेपर भी वह हिन्दुस्तानियोंसे घृणा नही करती थी और गाँवके बाल-बच्चोंको नाना उपहारोंका प्रलोभन देकर अपने पास बुलाकर उन्हें लाड़-प्यारसे अंगरेजी सिखाती थीं और स्वयं उनके साथ बातें करके हिन्दी सीख लिया करती थीं। वह बहुत अच्छी हिन्दी बोलने लगी थीं। मोहन भैयाको वह विशेष प्रीतिकी दृष्टिसे देखती थी और मेरे प्रति भी प्रसन्न थी। प्रायः मेरी ही अवस्थाकी एक अनाथ ऐंग्लो-इण्डियन लड़कीको उन्होने पोष्या बना लिया था। लड़कीका नाम कर्नोलिया था। वह हमारे साथ खेलती थी। जब मुझे मालूम हुआ कि मोहन भैया कल सारे दिन मुझे अकेले छोड़कर मुझे तनिक सूचना न देकर मिस हम्फ्रेके पास गये तो ईर्ष्याकी जलनसे मेरा हृदय फिर जल उठा। मैंने सोचा कि वह निश्चय ही कार्नीलियाके साथ रहना-खेलना अधिक पसन्द करते हैं। मैंने किताब जमीनपर पटक दी। मुँह फुलाकर बोली—"मुझे नहीं चाहिए। कार्नीलियाको देना।" यह कहकर मैं भीतर अपने कमरेसे चली गयी और भीतरसे किवाड़ बन्द कर दिया। मुझे रोनेकी उत्कट इच्छा हो रही थी।

मोहन भैया बाहरसे किवाड़पर धक्का देते हुए बोले—"बिन्दी, खोलो।"

मैंने वाष्पाकुल कण्ठसे कहा—"नहीं।"

मेरा गला रुँध जानेके कारण ज्यादा बोल न सकी। भैयाने बहुत जिद की, बार-बार धक्का दिया, पर मैं न मानी। आज समझ रही हूँ कि उस ईर्ष्या-जनित अभिमानमें कितना स्वाद था, कितना रस था!

इसी प्रकार क्रीड़ा-कौतुक, स्नेह-प्रेम, मान-अभिमानमें उनके साथ मेरे बाल्य-जीवनके दिन बीते। अन्यान्य बालक-बालिकाओंके साथ हमलोग खेलते थे, पर अन्यमनस्क होकर। जीवनकी यथार्थताका अनुभव मुझे तभी होता था, जब हम दोनो विश्व-संसारसे अलग एक निराले भाव-लोकमें संयुक्त होकर रहते थे। कभी किसी खेतमे जाकर हम दोनों तितलियोंको पकड़ते थे और उन्हे उड़ाते थे। कभी किसी कृषक-रमणीका निर्जन-सङ्गीत सुनते थे। कभी मिट्टीपर लेटकर ऊपर आकाशमें चीलोकी उड़ान देखते थे। अकेलेमे हम दोनों आपसमें बहुत कम बोलते थे, पर इस मौनावस्थामे हमारी आत्माओंके बीच जिस रहस्यपूर्ण वार्ताका आदान-प्रदान होता था, वह कैसी आनन्द-जनक थी! मैं सोचती थी कि अनन्त कालतक मेरा यह अव्यक्त, एकान्त सुख अभङ्ग रहेगा।

पर दैवको ऐसा मञ्जूर न था। उन्हें पढ़नेके लिए शहरमें जाना पड़ा। एक महीने पहलेसे उनके जानेकी खबर मुझे मालूम हो गयी थी। एक दिन सन्ध्याके समय एक देवदारुके पेड़के नीचे हम दोनों लेटे हुए थे। वह सन्ध्या मुझे बहुत अच्छी

तरह याद है। मोहन भैयाके हाथमें कहानियोंकी ,एक सचित्र किताब थी। वह कहानी पढ़ते हुए मुझे चित्र समझाते जाते थे। सामनेके पहाड़पर चीड़के पेड़ एक दूसरेसे सटे हुए माया-वनकी बहार दिखा रहे थे। सन्ध्याके अन्धकारसे उनकी छाया गाढ़तर होती जाती थी। हमारी दाहिनी ओर पश्चिममें सूर्य सुदूर पहाड़के नीचे आधा डूब चुका था। सर्वत्र एक स्थिर अटल शान्ति व्याप्त थी। बीच-बीचमें एक कुत्ता पहाड़ीकी ओटमें कहीं छिपा हुआ अकारण भूँक उठता था। उसके भूँकने-का शब्द पहाड़ी कन्दरामें गूँजता हुआ उस निस्तब्ध-सन्ध्याको अधिक उदास कर देता था। आज मोहन भैया कहानी सुनाते थे, पर उनके कण्ठमें मेरे नित्य-परिचित सहज आनन्दका लेश नहीं था। एक अन्यमनस्क भाव जैसे उनकी छातीको दबाता हो। अचानक कहानीके बीचमे ही किताब बन्द करके उन्होंने उदास स्वरमे मुझसे कहा—"बिन्दी, मैं जल्दी अलमोड़े चला जाऊँगा।"

चौंककर मैंने पूछा—"क्यों ?"

"बाबूजी मुझे वहाँ स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजना चाहते हैं।"

मेरे मुँहसे अनजानमे निकल पड़ा—"वहाँ अकेले कैसे रहोगे ?"

"यही तो सोचता हूँ बिन्दी, क्या करना चाहिए ? तुम जब यहीं रहोगी तो मैं वहाँ कैसे—"

मैंने झट बात काटकर कहा—"नहीं, नही, मैं यह पूछती थी कि तुम्हारे बाबूजी भी क्या तुम्हारे साथ जायँगे ? तुम वहाँ कहाँ रहोगे ?"

"बाबूजी नहीं जायँगे। बोर्डिंगमें रहना होगा।"

"तब चिन्ता क्या है। बोर्डिंगमें तुम्हारे साथी बहुत मिल जायँगे!" बोर्डिंगके अज्ञात लड़कोंपर मुझे ईर्षा हो रही थी।

मोहन भैया चुप रहे। कुछ न बोले। सूरज छिप गया। रातका बसेरा ढूँढ़नेके लिए व्याकुल कौवोंकी एक पाँति हमारे ऊपरसे होती हुई उड़कर चली गयी। मैं सोच रही थी कि बसेरा मिलनेसे भी अब किसीको क्या सुख मिल सकता है! गया! गया! चिर-जीवनका सङ्गी अब गया! रात्रिके आगामी अन्धकारकी तरह ही मेरे भावी जीवनका अन्धकार मानो मेरी प्रतीक्षामें था। कुछ देर बाद दोनों उठ खड़े हुए और घरको वापस जाने लगे। अँधेरा होने लगा था। पश्चिमाकाशकी सुनहली आभा सब मिट गयी थी और उसके ऊपर एक बहुत गहरा गाढ़ा नीला रङ्ग चढ़ गया था। जैसे इस एकान्त सन्ध्यामें मोहन भैयाके चले जानेकी खबर सुनकर समस्त प्रकृतिका पुञ्ज-पुञ्ज रुदन वहाँपर सञ्चित हो गया हो। सर्वत्र विषाद और विलाप मुझे नजर आता था। रातको नींद आनेतक अनोखी बेकली मनमें समायी रही और नींदमें भी वह व्याकुलता सारी अन्तरात्मामें सञ्चरित हो गयी थी।

दूसरे दिनसे मोहन भैयाके साथसे अलग बचकर रहनेकी चेष्टा करने लगी। कोई अव्यक्त संस्कार मुझे यह जता रहा था कि जो आदमी कुछ दिनोंके बाद सदाके लिए चला जायगा उसकी माया अभीसे छोड़नेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें देखते ही मेरे भीतर हाहाकार मच जाता और न देखनेसे मन कुछ शान्त रहता।

आखिर वह विकराल दिन आ पहुँचा। मैं चाहती थी कि विदा होनेके समय उनके दर्शन न हों। क्योंकि वह प्यारा मुखड़ा देखते ही मेरे भीतर मार्मिक यन्त्रणाकी ज्वाला धधक उठती। इसीलिए मैं उस दिन अपने कमरेमें किवाड़ बन्द करके सो रही। पर धत्तेरे दुष्ट भैयाकी! थोड़ी ही देर बाद द्वारपर धक्का देकर अपनी चिर-परिचित प्यारी बोलीसे उन्होंने पुकारा—

"बिन्दी!"

हा भगवान्! वह प्यारा कण्ठस्वर सुनकर क्या कोई रह सकता था! दुःख, शोक, अभिमान सब भूलकर उठ बैठी और किवाड़ खोला। क्षणभरके लिए उनके मुखके दर्शन करके मैंने आँखें नीचेको कर लीं।

"मैं जा रहा हूँ, बिन्दा! चिट्ठी लिखोगी?"

वह मुझे कभी 'बिन्दा' कभी 'बिन्दी', कभी 'बिन्दो' कहकर पुकारते थे।

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ पैरके अंगूठेसे मिट्टी खुरचने लगी।

कुछ देरतक भैया भी चुप खड़े रहे, फिर उन्होंने पूछा—"चाची और दादी कहाँ हैं? जाकर उन्हें प्रणाम कर आऊँ; देर होती है।"

मेरा गला रुँध आता था। बोलनेसे भीतरकी दशा बाहर व्यक्त न हो जाय, इस आशङ्कासे मैं कुछ न बोली, केवल उँगली-से मैंने भीतरकी ओर इशारा कर दिया। वह एक मिनटतक खड़े रहे, फिर भीतरकी ओर चल दिये। मैं दौड़कर बाहर चली गयी और धड़कता हुआ कलेजा लेकर दरवाजेपर खड़ी रही।

थोड़ी देर बाद भैया लौटकर सीढ़ियोंसे होकर नीचे चले आये। मैं कुछ देर सिटपिटायी, पर फिर रह न सकी, और प्रणाम करते हुए उनके पैर दोनों हाथोंसे जकड़ लिए। टप-टप मेरे आँसू उनके काले जूतोंपर पड़ने लगे। शिवजीकी मूर्तिपर भक्ति-पूर्ण हृदयसे अर्घ्याञ्जलि चढ़ानेवाली स्त्रीको शायद कभी उतना आनन्द नहीं प्राप्त हुआ होगा जितना मैं उस समय अनुभव कर रही थी।

"विन्दा, तुम रोती क्यों हो? मैं जल्दी लौटकर आऊँगा! मेरा मन क्या वहाँ मान सकता है?" उनका कण्ठ भी गद्गद, वाष्पाकुल था।

मैं उसी अवस्थामें मोहाच्छन्न-सी होकर स्थिर थी।

"उठो विन्दा, मुझे देर होती है। उठो मैना, इस समय मुझे छोड़ दो।"

"पहले शपथ लो कि जल्दी लौटूँगा और चिट्ठी लिखूँगा।"

"तुम्हारे सिरकी कसम, विन्दा, मै बहुत जल्द लौटकर आऊँगा। मैं चिठ्ठी जरूर लिखूँगा। अपनी गरजसे लिखूँगा। तुम इस वक्त उठो। प्यारी मैना, मत रोओ।" यह कहकर उन्होंने मेरे सिरपर अपना स्नेहकोमल हाथ रखा। मेरा हृदया-वेग इस स्नेहस्पर्शसे उमड़ चला और मैं उठकर मुँह फेरकर सिसकने लगी। मेरी पीठ थपथपाकर भैयाने मुझे दिलासा दिया और फिर चले गये। मै शून्य हृदयसे स्तब्ध, जड़ मृतवत् खड़ी रही।

दो दिनतक मेरा शोकावेग बहुत तीव्र रहा। पर फिर धीरे-धीरे मेरे हृदयमें स्थिरता आने लगी। यहाँतक कि मैं मोहन-

भैयाको बहुत-कुछ भूलने-सी भी लग गयी। अपनी हमजोलीकी लड़कियोंका सहवास मुझे मोहन भैयाकी स्मृतिसे हटाकर एक अनोखी दुनियाँमें ले जाने लगा। पहले मैं लड़कियोसे बहुत कम मिला करती थी। पर अब उनका सङ्ग मुझे एक अनोखे लोकसे परिचित कराने लगा। मेरी अवस्था प्रायः तेरह सालकी हो गयी थी। मैंने देखा कि मेरी सहेलियाँ जिस भावी जीवनकी सुखमय आशामें रहकर नाना इङ्गितोंसे अपने मधुर स्वप्नोंकी चर्चा करती हुई सयानी स्त्रियोंकी तरह गिरस्तीके धन्धोंकी ओर झुकने लगी हैं, उससे मैं आजतक बिलकुल अपरिचित थी। सयानी स्त्रियोंके बन्धन-युक्त गृहस्थ-जीवनमें मैंने एक ऐसी मोहिनी देखी जो दुर्निवार वेगसे मुझे आकर्षित करने लगी। मेरी सहेलियाँ सहज ही विवाहिता स्त्रियोंके साथ समान गतिमें चलने लगी थीं। पर मैं अभीतक एक भावुक बालिका ही रह गयी थी, इस कारण मेरे क्षोभकी सीमा न थी। बड़े घरकी लड़की थी, दादी अम्माँ और काकाकी बड़ी दुलारी थी। इसलिए कभी किसी काममें हाथ नहीं लगाती थी। पर मेरे हृदयके भीतर नवीन जीवनके रसका स्रोत धीरे-धीरे फूटने लगा, जो मोहन भैयाके साथ रहनेसे बिलकुल बन्द था, और मैं गृहस्थीके काम-काजोंमें शरीक होनेके लिए अत्यन्त लालायित हो उठी।

मेरी एक सहेलीका विवाह बड़ी धूमधामसे हो गया। स्त्रियों-मे कैसा उल्लास और आनन्द छा गया था। अपने जीवनमें प्रथम बार मैंने विवाहके शुभ कर्ममें दिलचस्पी ली। इस आनन्दको मैंने खुले दिलसे उपभोग किया, और अन्तको एक लम्बी साँस ली।

आखिर एक दिन मेरी बारी भी आयी। सारे गाँवमें धूम मच गयी, सारे घरमे दीप्त आनन्द जगमगाने लगा। समस्त आकाश और पृथ्वीको मै अलौकिक रंगसे रँगा हुआ देखने लगी। जिनसे मेरा व्याह होगा वह अलमोड़ेके निवासी हैं, यह जानकर मेरा आनन्द दुगुना बढ़ गया। क्योंकि मुझे मोहन भैयाकी याद आयी। अलमोड़ेमे उनसे मिलना हो सकेगा, यह सोचकर मेरी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जबसे भैया गये थे तबसे उन्हें मैंने नही देखा था। वह आनेका वादा कर गये थे, पर कुछ ही दिनोमें उनके पिताजीकी बदली हमारे गाँवके पोस्ट आफिससे किसी दूसरी जगह हो गयी, इसलिए वह फिर कभी हमारे गाँवको वापस न आये।

दादी, अम्माँ और सहेलियोको छोड़ते समय मैं बहुत रोयी, पर रास्तेमें सबको भूल गयी। जिस नयी दुनियाको मैं जा रही थी, उससे परिचित होनेकी उत्सुकताने मेरे सब दुःखोको भुला दिया।

सास और ननदोने अत्यन्त प्रेमपूर्वक मेरा स्वागत किया। जेठानियोंने भी मुझे देखकर प्रसन्नता प्रकट की, पर उस प्रसन्नतामें कुछ रुखाई थी। बाल-बच्चे, बड़े-बूढ़े सब मेरे आगमनसे प्रफुल्ल थे। तीन-चार दिनतक मैं सारे घरकी रानीके बतौर रही। चारों पहर बच्चे और युवती स्त्रियाँ मुझे घेरे रहतीं। पर धीरे-धीरे लोगोका उत्साह ढीला पड़ता गया और मैं प्रायः अकेली रहने लगी। मोहन भैयाको कैसे देखूँगी, मैं यही सोचने लगी।

अचानक एक दिन नौकरने आकर खबर दी—"बहूजी, तुम्हारे मायकेके एक आदमी आये हैं, तुमसे मिलना चाहते हैं।"

मेरी सास वहाँपर बैठी थीं। मुझसे पूछने लगी—"कौन है ?"

पर मुझे कुछ मालूम नहीं था। सासने कहा—"भीतर बुलाकर ले आ।"

थोड़ी देर बाद नौकर जिस व्यक्तिको साथ लेकर आया उन्हें देखकर मुझे आश्चर्य उतना नहीं हुआ जितना रोमाञ्च हुआ। मोहन भैया स्वयं मेरी खोज करके मुझसे मिलने आये थे। अब वह गाँवके लड़के नहीं रह गये थे। नगर-जीवनका सौष्ठव उनके सुन्दर मुखपर चमक रहा था। शान्त, स्थिर गम्भीरता उनके चेहरेपर विराज रही थी। मेरी सास भी उन्हे देखकर चकित रह गयी। वह जूते उतारकर कालीनपर बैठ गये। मैंने प्रणाम किया। पर सासके सामने उनसे क्या कहूँ, किस प्रकार बातें करूँ, कुछ समझमें न आया। उनका भी शायद यही हाल था।

मैंने धीमे स्वरमें पूछा—"तुम्हे कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ आयी हूँ?"

"यों ही; गाँवमें कुशल तो सब अच्छी है?"

"हाँ! तुम अब किस दरजेमें पढ़ते हो, भैया?"

"इन्ट्रेन्समें।"

इसी प्रकारकी अर्थहीन बातें हम दोनोंमें हुई। पर भीतर जो हृदयावेग उमड़ रहा था उसे बाहर निकालनेका उपाय नही था। कुछ देरतक दोनों मन मारकर बैठे रहे। इसके बाद मोहन भैया उठ खड़े हुए। "फिर कभी मिलूँगा," यह कहकर चल दिये।

पर इसके बाद वर्षोंतक उनसे मुलाकात नहीं हुई। इस बीच मैं कितनी बार मैके गयी, कितनी बार ससुराल वापस आयी।

प्रारम्भमें ससुरालका जीवन बिलकुल निरानन्द मालूम हुआ। मायके जाती तो वहाँ भी पहाड़ी खेतोंपर झूमती हुई सन्ध्याकी पीली छाया एक अज्ञात उत्सुकतासे मुझे व्याकुल करती; ससुराल आती तो वहाँके वद्ध जीवनका भार पत्थरकी तरह मेरी छाती-पर पड़ा रहता। पर धीरे-धीरे पतिदेवसे मैं हिलमिल गयी और तब मैंने जाना कि मेरे जीवनकी सार्थकता कहाँपर है। उनके चरणोंकी सेवासे मैं अपनेको धन्य समझने लगी और उनके प्रेम-भरे शब्दोंको अतृप्त हृदयसे पान करने लगी और उनकी इच्छाके बहावमें मैंने अपनी सब कामनायें बहा दी। अपना जीवन-यौवन मैं पूर्णतया सफल समझने लगी। कहाँ गयी मेरे बाल्य-जीवनकी झूठी स्मृति, कहाँ लोप हुई मोहन भैयाके लिए मेरी व्याकुलता!

मेरे पति सात-आठ सालसे वकालत कर रहे थे। बुद्धिमान और वक्तृत्वमें निपुण होनेके कारण उनकी प्रैक्टिस खूब अच्छी चल रही थी। मेरे ससुरालके लोग खूब धनी थे, इसलिए मेरे पतिके ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं था। रोज रुपयोंसे मेरी मुट्ठी गरम होती थी। मैं एक बक्समें रुपये जमा रखती थी। मैं रुपयोंकी भूखी नहीं थी, पर पतिदेव शायद मेरे प्रति अपने विशेष प्रेमका परिचय देनेके लिए और मुझे पूर्णतः वशमें रखने-के लिए मुझे चाँदी और सोनेके बोझसे लादा करते थे। मैं उदासीनतासे रुपयों और गहनोंको बक्समें जमा करती जाती थी। उनका स्नेह पाकर ही मैं कृतार्थ थी।

पर धीरे-धीरे मेरे अनजानमें एक अवसाद मेरे चित्तको घेरने लगा। सुख-स्वर्गमें रहनेपर भी किस लिए यह विषाद था?

एक दिन मेरी एक मौसीने मुझे निमन्त्रण दिया। वह मेरी अम्माँकी चचेरी बहन थीं। नित्य दिनभर घरके भीतर एक प्रकारकी कैद भुगता करती थी। इसलिए निमन्त्रणमें जाने-से कुछ देरके लिए मुक्ति मिलेगी, यह सोचकर मुझे प्रसन्नता हुई। एक दासीको साथ लेकर मौसीके यहाँ गयी। मौसीने बड़ी आवभगत की, और ससुरालमें मुझे क्या सुख है, क्या दुख है, इस सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये। सहसा क्या देखती हूँ कि मेरे बाल्य हृदयके राजा भीतर हमारे सामने खड़े हैं। ओ भगवान्! उस अप्रत्याशित आनन्दका वर्णन मैं कैसे करूँ! मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इतने दिनोंतक मैं उन्हे कैसे भूल गयी थी। अङ्ग-अङ्गमें आनन्दकी तरङ्ग लहराने लगी और इतने दिनोंका अवसाद पलमें विलुप्त हो गया। मैंने श्रद्धापूर्वक हृदयसे प्रणाम किया। मौसीने कहा—"बैठो लल्ला!"

भैया हमारे ही साथ नीचे बैठ गये। कितना बदलाव उनके चेहरेमें हो गया था। गालोंकी हड्डियाँ बाहरको निकल आयी थीं, आँखें नीचेको धँस गयी थीं। पर कुटिल भौंहोंकी तनी हुई रेखाओंमें वही पहलेका उन्नत, गम्भीर भाव अठखेलियाँ कर रहा था; उज्ज्वल आँखोंकी स्निग्ध ज्योतिमें वही रहस्यमय विस्मय झलक रहा था।

"तुम बहुत दुबली हो गयी हो, बिन्दो! आज बहुत दिनोंके बाद तुम्हें देखा है!"

मैंने कहा—"मैं दुबली हो गयी हूँ, यह कैसी बात तुम कहते हो, भैया! मैं तो अपनेको खूब तन्दुरुस्त समझती हूँ। पर तुम्हें क्या हो गया है? गालोंकी हड्डियाँ बाहर निकल आयी हैं,

आँखोंके नीचे गढ़े पड़ गये हैं, मुँहका रस सब सूख गया है। कहाँ रहते हो, क्या करते हो, तुम्हारे घरका क्या हाल है, मुझे कुछ भी तो नहीं मालूम ! मेरी शादीके दिन सिर्फ एकबार मुझसे मिलने आये थे, उसके बाद आजतक मैं मर गयी हूँ या जीती हूँ, इसकी कुछ खबर भी तुमने नहीं ली।"

मेरा अभिमान हृदयमें फूल रहा था। मोहन भैया मेरी बात सुनकर भुवनमोहन हास्यसे मुसकराये। बोले—"बिन्दा, मैं तो अवश्य तुम्हारे पास आता, पर तुम्हारे ससुरालवाले मनमें क्या सोचेंगे, यह सोचकर मैं न आया। जब तुम पहले-पहल ससुराल आयी थीं, तब बात ही दूसरी थी; पर अब तुम सयानी हो गयी हो।"

मेरे ससुरालवाले संशयी प्रकृतिके थे, इसमें सन्देह नहीं; पर भैयाको यह बात कैसे मालूम हो गयी थी, कह नहीं सकती।

मैंने पूछा—"आज यहाँ कैसे आ गये ?"

वह विशेष अर्थ-भरी मुसकानसे मौसीकी ओर ताकने लगे। मौसी भी उसी तरह मुसकरा रही थी। मैं समझ गयी, मोहन भैया के आग्रहसे ही मौसीने मुझे बुला भेजा है।

बहुत देरतक हम दोनोंमें घुल-घुलकर बातें हुईं। मैं आज अपनेको विश्व-संसारसे निर्मुक्त समझ रही थी और मेरा मन आकाशविहारी निर्द्वन्द्व पक्षीकी तरह उल्लासपूर्वक विचर रहा था। पर सन्ध्या होने लगी और जलपान करके भैया उठ खड़े हुए। पुनः गहन अन्धकारने मेरे हृदयमें हाहाकारका काला पट फैला दिया। इच्छा हुई, भैयाके पाँव जकड़कर लेकर, गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करूँ कि मुझे मत छोड़ो, जहाँ जाते हो

मुझे अपने साथ ले चलो। पर हाय! अन्तर्क्रन्दनको बाहर प्रकट करनेका कोई साधन मनुष्यके पास नहीं है।

"अब तो मौसीका घर तुम देख ही चुकीं, विन्दो! यहाँ आती-जाती रहना, मैं यहीं मिला करूँगा। आज इतवार है। अगले इतवारको क्या आ सकोगी?"

मैंने कहा—"कोशिश करूँगी।"

"अच्छी बात है। इस वक्त मैं जाता हूँ!" यह कहकर नव-यौवनके मदसे इतराते हुए अपने सुगठित शरीरको बाल-केसरीकी तरह झूमती हुई चालसे लचकाते हुए वह चल दिये।

इसके बाद मैं अकसर मौसीके यहाँ आने-जाने लगी, पर भैयासे भेंट न हुई। एक दिन दीवालीके अवसरपर मौसीके छोटे लड़केका जन्म-दिवस था। मैं भी निमन्त्रित थी। बड़ी चहल-पहल मची हुई थी। कई स्त्रियाँ एकत्रित थीं और आनन्द-के रंगमें रंगी हुई, गा रही थीं। मैं भी उस 'संगीतमें अपना क्षीणकण्ठ मिला रही थी। अचानक मोहन भैया अपना मोहन रूप लेकर स्त्रियोंके बीचमें आ खड़े हुए। सब स्त्रियाँ उनका यह दुस्साहस देखकर चकित रह गयीं। गाना बन्द हो गया। किसीने घूँघट काढ़ा, कोई कनखियोंसे उन्हें झाँकने लगी और ढीठ होकर टकटकी बाँधे उनके दिव्य रूपको निहारती रही। मौसीने प्रसन्न होकर कहा—"बड़ी देरसे तुम्हारा इन्तजार करती थी लल्ला! मैंने सोचा था आज सुबह यहीं खाओगे।"

"आ नहीं सका मौसी, माफी चाहता हूँ। विन्दी आयी है?"

मैंने मुँह जरा फिरा लिया था। इस स्त्री-समाजमें वह मुझे स्पष्टतया न देख सके।

मौसीने कहा—"बिन्दी, देखती नहीं मोहन आया है।"

मैंने उनकी ओर देखा। उनकी यह ढिठाई मुझे समयोचित न जान पड़ी। मैं मन-ही-मन कुढ़कर रह गयी। सब स्त्रियाँ मनमें क्या सोचेंगी ? पर वास्तवमें सब स्त्रियाँ मुझे ईर्षाकी दृष्टिसे देख रही थीं। क्यों न हो, ऐसे देवरूप भैया जिसके हो उसके सौभाग्यपर किसे ईर्षा न होगी ?

"बिन्दी, जरा सुनना। एक जरूरी काम है।"

हड़बड़ाती हुई उठी और उनके पास गयी। एक एकान्त कमरेमें मुझे ले जाकर वह धीमे स्वरमें बोले—"मैं सौ रुपये हार गया हूँ। बड़ी आफतमें हूँ बिन्दो !"

"क्या तुम जुआ खेलते हो ?" मेरा गला काँप रहा था। दुःख और घृणासे मैं क्षुभित हो गयी।

अत्यन्त करुण, कातर स्वरसे उन्होने कहा—"हाँ, इधर कुछ दिनोंसे यह बुरी लत पड़ गयी है। दीवालीका शकुन है। तुमसे रुपये माँगने आया हूँ, बिन्दो ! नाहीं मत करना। बड़ी आशासे आया हूँ।"

वह आर्त, करुण याचना मेरा कलेजा चीरे डालती थी। मनमें सोचने लगी—"भगवान् ! मेरे देवताका यह पतन क्योंकर सम्भव हुआ !"

बोली—"रुपये तो मेरे पास यहाँपर नही हैं भैया, पर यह सोनेका हार है। चाहिये, तो ले जाओ।"

"सच कहती हो ? तुम्हारे सरकी कसम बिन्दो, मैं तुम्हे नया हार बनवा दूँगा। कोई चिन्ताकी बात नहीं है।"

सोचा था कि वह हारके लिये कतई राजी न होंगे।

क्या जुएकी हार सचमुच मनुष्यको इतना अविवेकी बना डालती है ?

घृणा, करुणा और असमञ्जसने मुझे एक साथ धर दबाया। आखिर मैंने अपना प्यारा हार गलेसे निकालकर दे ही दिया। वह उल्लासपूर्वक चले गये। मुझे धन्यवाद देनेके लिए भी उन्हे फ़ुर्सत नहीं थी।

रात-भर मैं क्षोभके कारण रोती रही। जैसे किसीने मेरे देवताकी मूर्तिके मुखमें कालिख पोत दी हो, ऐसा भास हो रहा था। सारी रात बेकलीसे छटपटाती रही, एक पलक आँख न लगी। इतने थोड़े अर्समें मेरे प्यारे भैया क्यासे क्या हो गये थे !

पर दूसरे दिन मेरे ऊपर सासकी जो मार पड़ी, उससे मैं भैयाके पतनकी बात भी भूल गयी। स्त्रियोंकी दृष्टि भी कितनी पैनी होती है ! मेरे पतिदेवने मुझसे कुछ न कहा, पर सासने पहली नजरमें मेरा गला देखते ही पूछा—"क्यों, हार कहाँ गया ?"

कुछ सिपपिटायी। फिर बोली—"टूट गया था, बक्समें बन्द करके रख दिया है।"

पर उन्हें यकीन न हुआ। कुछ भी हो, उस समय वह चुप हो रहीं। शामको पड़ोसकी एक स्त्रीने, जो मौसीके यहाँ निमन्त्रणमें गयी थी, सासके सामने मुझसे पूछा—"कल वह छोकरा कौन था जो तुम्हे एक जरूरी कामके लिए अलग बुला ले गया था ?" यह कहकर वह व्यङ्गके तौरपर मुसकुराने लगी। मेरे पैरोंके तलेसे होकर धरती सरकने लगी। मुझे चक्कर-सा आने लगा

अपनेको सँभालकर बोली—"कोई नहीं, मोहन भैया थे। गाँवसे लौटकर मेरे मायकेकी कुशल लाये थे।"

सासने कहा—"मैं तो यही सोचती थी कि हफ्तेमें दो-दो दिन मौसीके यहाँ आना-जाना आजकल क्यों हो रहा है! आज मालूम हुआ है। अच्छी बात है!"

वह मन-ही-मन गुस्सेको पीनेकी चेष्टा कर रही थीं। पर उनके लिए यह असम्भव था और दिनभर वह बड़बड़ाती रही। मेरी ग्लानिकी सीमा नहीं थी। धीरे-धीरे घर-भरमें यह बात फैल गयी कि मैंने अपने गलेका हार एक जुआरीको दे डाला है। इस घटनाके सम्वन्धमे एक घृणित कलङ्ककी रटनाका होना अनिवार्य था। पर मेरे ससुरालके प्रायः सभी लोग अत्यन्त सभ्य और सुशिक्षित थे। आभिजात्यकी गौरव-मण्डित शान्त गम्भीरता अपनी अस्निग्ध छायासे इस घरको सदासे घेरे हुए थी। इस कारण यह निन्दात्मक चर्चा होते-होते दब गयी। यहाँतक कि मेरी सासमें स्त्री-जातिकी अस्थिरता पूर्ण-रूपमें विद्यमान होनेपर भी उन्होंने पतिदेवको अधिक मात्रामे सशङ्कित न होने दिया। पतिदेव सबसे अधिक सभ्य थे। मनमें कैसा ही संशय उन्हें क्यों न हुआ हो, मुखसे उन्होंने कुछ भी प्रकट न किया। मन-ही-मन उन्हें कोटि-कोटि धन्यबाद देकर अपनेको धिक्कारने लगी।

समय बीतता चला गया। मोहन भैया जरूर ही उस हारको भी जुएमें हार गये होंगे, क्योंकि एक दिन संयोगवश मौसीसे मुलाकात होनेपर मालूम हुआ था कि वह तबसे उनके यहाँ भी नहीं आये। इस पतित जुआरीके प्रति एक तीव्र घृणा

जागरित होने लगी थी, पर जब कहींसे कोई सम्वाद उसके सम्बन्धमें न मिला तो मैं उत्कण्ठित हो उठी। मैंने सोचा कि लज्जा और ग्लानिसे वह दुनियाको अपना मुँह नहीं दिखाना चाहते—यदि किसी प्रकार कहीं निश्चिन्त एकान्तमें उनसे मिल सकती, तो दिलासेकी दो बातें कहती। जतलाती कि हारको हार गये तो कोई विशेष क्षति नहीं हुई—पछताना वृथा है। पर मिलना तो दूर रहा, कोई खबर ही उनके सम्बन्धमें कहींसे नही मिलती थी। न मालूम क्यो, मुझे पूरा विश्वास था कि पतिदेवको भैयाकी सब खबर मालूम है। मेरी उत्सुकतासे भी वह परिचित थे। यद्यपि अनजानसे बने रहते थे। पर उनसे कुछ पूछनेसे जमीनमें गड़ जाना आसान था।

प्रायः छः महीनेतक मन मारकर रही। कोई समाचार नहीं मिला। अन्तको एक दिन सुना कि वह अलमोड़ा छोड़कर चले गये थे और अब कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, शिमला आदि स्थानोंमें नौकरीकी खोजमें मारे-मारे फिर रहे हैं। एक लम्बी साँस, लेकर मैंने मन-ही-मन कहा—"अच्छा ही है।"

समय ऐसा है जो माताको पुत्रका मृत्यु-शोक भी भुला देता है। बरसोंतक मोहन भैया गायब रहे और मैं उनकी बात प्रायः बिलकुल ही भूल गयी। अपने ललनको लेकर मैं ऐसी व्यस्त हो गयी थी कि दीन-दुनियकी सुध मुझे नहीं थी।

होलीका मौसम था। होलीकी पूर्णिमासे एक दिन पहलेकी बात है। प्रतिवर्ष इसी दिन मेरे ससुरालवाले उत्सव मनाया करते थे। आज भी राग-रङ्ग मचा हुआ था। दालानमें शामियाना तना हुआ था। होलीके रङ्गसे रंगे हुए शहरके सब

पुरुष आये हुए थे। पहाड़मे एकादशीके दिन ही कपड़ोंपर रङ्ग पड़ जाता है। अबीरके बादल छाये हुए थे और सबके मुँह उससे लालिमामय थे। पानकी गिलौरियाँ बँट रही थीं, इत्र सुँघाया जा रहा था, बीच-बीचमें गाँजा, सुलफा भी चलता था। यह तबकी बात है, जब असहयोग आन्दोलन शुरू नहीं हुआ था। गानेवालियोंकी एक जोड़ी भी मौजूद थी। कभी नाच होता, कभी गाना। कभी सारङ्गी बजती, कभी हारमोनियम। तालियोंका तो कहना ही क्या है। भङ्ग भी पिलायी जा रही थी। गँजेड़ियों और भँगेड़ियोंने अच्छा रङ्ग जमा रखा था। खास-खास आदमियोंको भीतर खिलाने-पिलानेका बन्दोबस्त भी था। नाना प्रकारकी मिठाइयाँ और चटनियाँ भीतर बनकर तैयार हो चुकी थीं और सब्जियाँ बन रही थीं। खस्ती पूरियाँ गरमागरम उतारी जा रही थीं। मैं इन्हीं पकवानोंकी देखरेखमे व्यस्त थी और अवकाश पाते ही चिककी आड़से बाहर भी झाँक लेती थी।

महाराजने कहा—"घी खतम हो गया है बहूजी, भण्डारसे आधा कनिस्टर और निकलवा दीजिये।"

रामसिंहको लेकर मैं भण्डार-गृहमे गयी। अचानक बाहरसे बहु-सम्मिलित कण्ठस्वरसे सुननेमे आया—"आइये, पधारिये, नमस्कार, कब तशरीफ लाये? इतने दिनोंतक किस गुफामें छिपे रहे?" इत्यादि-इत्यादि। मनमें एक सामान्य उत्सुकताका सञ्चार हुआ। छज्जेमें जाकर चिकसे बाहर झाँकने लगी। ओ भगवान्! क्या यह सम्भव था? मेरी आँखें क्या मुझे धोखा दे रही थीं? देखा कि मोहन भैया देवताकी तरह मन्द-

मधुर मुसकानसे सबको अपनी अनुग्रहपूर्ण कृपा-दृष्टिसे कृतार्थ कर रहे हैं। मेरे सिरसे पैरतक एक पुलकप्रद कण्टकित वेदना लहरा उठी। कैसा मायावी वह सकरुण, भाव-विस्मय रूप था। लाख पुरुषोंके बीचमें वह अलग अपने विशेषत्वसे झलक उठता, मुझे यह पूरा विश्वास है। उस उन्मत्त मण्डलीसे उसमें कैसी विभिन्नता थी! शान्त, तथापि दृढ़! सुकुमार तथापि तीक्ष्ण! मुझे एक साथ रोने, चिल्लाने तथा हँसनेकी इच्छा हुई। पतिदेवने अत्यन्त स्नेह तथा आदरसे उन्हे ऊपर बैठाया।

भण्डार-गृह बन्द करके मैं भीतर गयी, फिर बाहर आयी; फिर गयी, फिर लौटी। चित्त बड़ा चञ्चल हो रहा था। मुझे पूरा विश्वास था कि पतिदेवके न्योता देनेपर ही भैया आये हैं। पर उनके आनेकी खबरतक पतिदेवने मुझे नही दी! अभिमानसे मेरी छाती फूलने लगी। पर यह अभिमान किसके प्रति था?

जी उचाट हो गया था, किसी काममें मन नहीं लगता था। बीच-बीचमें रह-रहकर एक उत्सुकता मुझे व्याकुल कर रही थी। मैं सोच रही थी, क्या मोहन भैया भीतर आवेंगे और मैं अपने हाथसे उन्हें खिलाऊँगी? नाना प्रकारकी सम्भव-असम्भव कल्पनायें मस्तिष्कमें सुरसुराने लगी। अकस्मात् वायुमण्डलको चीरती हुई एक अलौकिक तानसे स्वप्न भङ्ग हुआ। मोहन भैयाने हाथमें हारमोनियम लेकर वीणानिन्दक अलाप छेड़ दिया था। रङ्ग-रहस्यमें उन्मत्त सारी सभा स्तब्ध हो गयी थी। न किसीको वाह वाह कहनेका साहस होता था, न किसीको बेताल तालियाँ बजानेका। सबको मुग्ध, मन्त्र-विह्वल करके, भावमयी आँखोंको आकाशकी ओर घुराकर भैया गाने लगे—

साँझ भयी, घर जाओ लला !
मुरली ना बजाओ, विहारी लला !
अँसुवनकी झड़ लाग रही है,
तनसे छूटत चिनगारी;
भभूत रमाय जोगन बन बैठी,
हमरी सुध बिसरायी लला !
मुरली ना बजाओ विहारी लला !

उस दिनका वह गाना मैं मरते दमतक कभी नहीं भूलूँगी। उपयुक्त समय था। पश्चिमकी तरफ सीमान्तके पहाड़पर सूर्य पीला पड़ गया था। सारी सान्ध्य-प्रकृतिमें रङ्गीन होलीकी मीठी उदासी छायी हुई थी। तिसपर मोहन भैया आज देश-परदेशसे भटकते हुए आकर जीवनके सम्बन्धमें नाना गम्भीर भावपूर्ण अभिज्ञता लेकर मुखमे करुणा-व्याकुल गद्गद, विह्वल रूप झलकाकर आये हुए थे। इन सब कारणोंसे उस गीतकी वेदनाने मेरे रोम-रोममें उन्माद सञ्चारित कर दिया। मैं अपने आपेमें नहीं थी। एकटक आँखोंसे वह मोहन रूप निहार रही थी और व्याकुल कर्णोंसे वह मोहोत्पादक रस पी रही थी। एक अलस निद्राका-सा रसावेश मेरे मस्तिष्कको आच्छन्न कर रहा था। सब मान-अभिमान भूल गयी। इच्छा होती थी कि भरी सभामें उनके चरणोंके तले मूर्च्छित होकर गिर पड़ूँ। पर हाय, क्या यह सम्भव था ! अब स्वर्गके देवताके समान ही मोहन भैया मेरे लिए सत्य थे और उसी तरह असत्य भी। एक दिन दिवालीके अवसरपर जिन्हे मैंने मन-ही-मन तिरस्कृत किया था, आज होलीके मङ्गल उत्सवमें मेरी सारी आत्मा उनके

स्वागतके लिए पागलोंकी तरह पछाड़ खा रही थी। पर इतने निकट होनेपर भी वह मुझसे इतनी दूर थे! मैं जानती थी कि जबतक स्वर्ग और मर्त्यका मिलन नहीं होगा तबतक उनसे मैं मिल नहीं सकती। फिर भी......

❋ ❋ ❋

"अम्मीं!"

चौंक पड़ी। पीछे फिरकर देखती हूँ कि लल्लन नींदसे जगकर जम्हाइयाँ लेता हुआ मुझे पुकार रहा है। आह, मेरे लाल! तुम्हें भूलकर किस मायावी संसारकी मरीचिकामें भटक रही थी। तृष्णासे गला सूख गया था और घोर भ्रममें मृगजलकी ओर दौड़ रही थी जब अमृतजल मेरे पाससे होकर बह रहा था। पलंगपर झुककर बार-बार उसका मुँह चूमा और असह्य तृष्णाकी ज्वाला बुझायी।

"अम्मीं, रोती थीं?"

कब कैसे आँखोंसे आँसू ढरक पड़े थे, इसकी मुझे खबर ही न थी! आँखें अञ्चलसे पोंछकर पुलक-भरी मुसकानसे फिर उसे चूमते हुए बोली—"नहीं राजाबाबू, मैं क्यों रोने लगी!"

[लेखक—श्री 'पहाड़ी']

आभी,

तुमको पत्र लिख नहीं सका। दिन, महीने और दो साल बीत गये; फिर भी कुछ लिखनेका साहस कहाँ हुआ ! तुम सोचती होगी कि तुमसे बड़ी दूर चला गया हूँ। तुमको वह अधिकार है। मुझे उपेक्षित तुम मानती हो न ! लेकिन सच कहता हूँ कि इन दो सालोंमें एक दिन भी ऐसा वक्त नहीं मिला कि कुछ तुमको चार लाइनोमे लिख सकता। अपने भीतर मैं बहुत अस्वस्थ था, काफी उलझन और अड़चनें जीवनसे आ लगी थी। वैसे जीवन तो एक मशीनके समान ही काम करता है, और मैं दुनियांके भीतर इस तरह हल गया कि अपनेसे बाहर ही क्यो, अपनेपर भी सोचनेको मुझे वक्त नहीं था।

आजका पत्र भी तुम अपनेको नहीं समझना। अब मैं तुमको लिखकर अपना दावा पेश कर रहा हूँ। निरा स्वार्थ ही तुम इसमें पाओगी। माफ मुझे फिर भी कर देना। क्या तुम मुझे नहीं पहचानती हो? छोटी-छोटी एक-एक अपनी बात भी मेरी तुम्हारे पास जमा है। उनको खूब टटोल और परखकर, तुम मेरा हृदय पहचान सकती हो। वहाँ तुमको एक सच्चाई भी ढुबकी मिलेगी, तब तुम मुझे और भी अपना सगा पाओगी—मेरा यही विश्वास है। तुम तो समूची मुझमें हो ही। मैं तुमको खूब—खूब जानता हूँ। जिन्दगीका एक बड़ा अरसा मैंने तुम्हारे साथ काटा है। भाईकी आड़मे एक दिन तुम मुझे मिली थीं, और अपना आदर मैंने तुम दोनोंको बराबर बराबर बाँटा था। भाई श्रद्धा और तुम घमंड करनेके लिये आज भी मेरे पास हो—समीप, मुझसे लगी! यह सब पाकर ही तो मैं निश्चिन्त रहा हूँ। भले ही चिट्ठी न लिखूँ, दूर रहूँ; किन्तु तुम्हारी आहट, झलक. चुटकियाँ, सवाल······सब, सब बराबर आज भी मुझसे खेलते रहते हैं।

कुछ फिर भी तुमसे कुछ और कहना है। महसूस करता हूँ कि वह जरूरी है। बिना कहे भी नहीं रह सकता। तुम कुछ भी समझ लेना। तुम्हारे आगे सब कुछ कहते आजतक डरा, कि आज ही डरूँ। सब सँवारकर तुम रखना; समीप ही मुझे समझना। दूरीका सवाल न रख, मुझे अपने दिलमें ढूँढ़ लेना। भाभी, मैं वह तृण नहीं, जिसे तुम अलग हटा सको। हमारा आपसी एक समझौता है। उसका मान तुमको करना पड़ेगा। अकारण ही संकोचकी कोई भी भावना इसलिए

मुझमें नहीं उठती। जानकर भी अनजानकी तरह पड़े रहना मेरी खुदकी शिक्षा नहीं है, तब भी क्या मैं कोई झगड़ा मोल लूँगा।

शीलाकी मुझे जरूरत है। शीलाको मैंने खूब प्यार किया है। आज भी मेरे दिलमें वह चलती-फिरती, मुस्कराती लगती है। वह जैसे कि समीप-समीप मुझसे लगी, सटकर बैठी हो! उस शिलाकी गूँगी तस्वीरके आगे हार मैं जाता हूँ। वह तो केवल मुस्कराहट बिखेर, ओझल हो जाती है। नहीं जान पाता कि आखिर वह नादान शीला, कब और कैसे इतनी समझदार हो गयी है। लड़कियोंमें वह कैसा गुण रहता है, जिसे जान लेनेको पुरुष सर्वदा उतावला रहेगा और उसको पा लेनेमें भी क्या, बार-बार मनमें अकुलाहट नहीं, उचाट नहीं? तभी तो झुँझलाहट वार-वार मनमे उठती है। क्या मुझे शीलाकी तस्वीर एक दिन इसीतरह नजदीकसे दूर कर जाँचनी थी? यही था क्या मेरा भविष्य? कुछ अन्दाज लगा नही पाता हूँ; सोचता हूँ भाभी, क्यों तुमने शीलासे मेरा परिचय कराया था। तुमने कहा था एक दिन—सोहन, देख, अबके शीला आयी है!

और मैंने देखा था शीलाको, खूब सुन्दर थी वह। उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें कितनी मदिरा थी। गोल मुँहकी सादगी, उसकी जामुनी साड़ी और गुलाबी जम्परने तो मुझे खूब उलझाकर व्यस्त कर दिया था। उन दिनो मेरी धारणा थी भाभी, कि प्रेम एकाकार है, वह वास्तविक और पूर्ण है। एकमात्र 'तुम' मेरी अपनी लगती थी, और तय किया था, तुम्हारे आगे दूसरेसे प्रेम कर नही सकूँगा। मै जीवनको प्यार करता था, और

तुममें वह पाकर अचरजके साथ मैंने तुमको देखा था। कितनी सरल तुम थीं भाभी! वह सारा नारी-स्वभाव कहाँसे तुम बटोर लायी थी? मैंने जाना था, एक मेरी भाभी है। वह मुझे अपनेमे सँवारे रखनेकी सामर्थ रखती है। मैंने भी कहाँ आनाकानी की? तुम पालतू बनाना खूब जानती हो न! तुमसे कहाँ कुछ डर मुझे था? तर्क कभी मैंने नही किया, जानकर कि यह भाभी मेरी है। भाभी रानी है। मेरी भाभी वह है। कितना भावुक मैं हूँ! तो भी अपनी भावुकताको बिसारा मैंने नही। उसके अनुरागके साथ तुम्हारे निकट अपनेको टटोला ही कब था? जैसे कि तुम निर्देशक थीं, और मैं केवल सोहन—एक व्यक्ति!

आज प्रेमका वह आदर्श व्यर्थ लगता है। दूरका पहेली बना थोथा प्रेम मुझे नहीं चाहिये। आज मैं नारीसे जीभर, मनभर खेल, उसे खूब छेड़ना चाहता हूँ। पत्नी मुझे चाहिए। रंगीन प्रेयसी मिल जाये, तो नाता जोड़ लूँ। नारीका भीतरी आकर्षण मैं पाना चाहता हूँ, उसके आँचलको टटोलकर मैं पूरा बन जानेकी धुनमे हूँ। अपनी कमी हर एक इन्सान एक दिन जान लेता है। अधिक वह सरोकार व्यर्थसे तब नहीं रखता यह जीवनका पागलपन नहीं—वासनाको पा लेना ही जीवनकी जीत है। लालसाकी धुँधली, मतवाली आँखें मुझे नहीं चाहिए। मैं युवतीके चुम्बनका भूखा हूँ, राख बननेको तैयार हूँ, आदर्श ...आदर्श! यह सब एक ढोंग है, कोरा झूठ—झूठ! इसे अविश्वास मानकर अब मैं चलूँगा, यही मेरा ख्याल है। अधिक कुछ भी विचारनेकी फिक्र मुझे नहीं है; तब तुम......।

शीला आज आगे आती है—वही अपनी हल्के रंगवाली बैंजनी साड़ी पहने, माथेपर चन्दनका टीका लगाये। वह तो अपनी समस्त नारी अनुभूति बिछा, अपना सौन्दर्य बिखेरती मालूम पड़ती है। कुछ बातें कर, अपनेसे लगाना चाहता हूँ। वह शरमाकर छिप जाती है। भाग फिर जाती है; मैं तो उद्भ्रान्त हो उठता हूँ। कुछ भी सूझता नहीं है। परेशानी बढ़ जाती है और ख्याली एक नारी—मन-माफिक, अनजाने पुकारता हूँ—आ मेरी शीला रानी! आ गयी मेरी शीला रानी! वह दीख कब पड़ती है! कुछ नहीं, कुछ नहीं, तब शीला एक भावना है? वह तो मैने समूची नारी रूपमें देखी थी। यह मेरा कहना क्या अनुचित व्यापार है? क्या मैं ही हूँ बेवकूफ? कुछ समाधान अकेले—अकेले कैसे कर लूँ? भला क्या फैसला खुद मैं दे सकता हूँ? मैं क्या अपनेको पकड़ पाता हूँ? मैं भी कहाँ हूँ बहुत बड़ा कि सारी दुनियाँको ठीक-ठीक पहिचान, अपने लायक जगह ढूँढ़, कह दूँ अपनेसे—यहीं रहेगी शीला। वह आवेगी—जावेगी। सच ही शीला आवेगी, वह शीला फिर भाग नही सकेगी! मैं खूब प्यास बुझाकर साथ रहनेके लिए उसे मजबूर करूँगा। वह अच्छी लड़की है। आदमीकी पूरी-पूरी पहिचान उसे है। तो वह......

शायद तुमने ही गलती की होगी कि, शीलासे मेरा परिचय कराया। क्यों मेरे आगे शीलाको किया था? शीला! अनजान, मजाकही मजाकमें, तुम तो उसे मुझे सौंप चुकी थीं। क्यों तुम शीलाको छेड़ा करती थीं—उकसाती थी? मुझे बीचमे रख, बार-बार चुटकी लेना क्या साधारण खेल ही था? और

मुझसे सवाल करती थीं—शीला कैसी है? शीलाकी नयी साड़ी देखी? आखिर क्या जबाव इसका तुम्हारे पास है? शीला कुछ पहने, उससे कुछ मतलब तो मुझे गाँठना नहीं था। उस लड़कीको अपनेमें परिचित कर अपना कोई हक साबित करनेकी चाहना मेरी थी। उस शीलाको तुम्हारे पास तो रोज ही देखा करता था। कहीं भी थकावट महसूस नहीं हुई। रोजाना जीवनमें आगे शीला—शीला ही रह गयी थी। एक नाम, और वही एक नारी रूप!

अपनी गृहस्थीमें भाई साहबको आफिस चले जानेके बाद शीला और मुझे लेकर ही सारा बेकार दिन तुमको काटना था। और कुछ काम था नहीं। कहीं एक 'बेबी होता, उसकी हिफाजत करनेमें लगी रहती। खाली ही तुम थीं, और अपनी बात रखकर तुम इसमें बार-बार झगड़ा करवा देती थीं। क्या सच ही वह तुम्हारे दिलका कोई अभाव था? अन्यथा उतना वह सब असहनीय भार तुम कैसे सहा करतीं? या अनजान थी, जानकर कि शीला बारूदकी पुड़िया है? सच भाभी नारीकी स्पर्धा तुम कैसे बिसार देती थीं? आज सारी बातोंकी पैंठ लगाकर, उसका भाव तोल करता हूँ। यह वही दूकानदारी मैंने फैलायी है! अपनेसे समस्या हल नहीं होती। मैं बेबस हूँ। क्या करूँ, फिर?

उसी दिन तुमने शीलाको क्यों इतना सजाया था? अपनी सारी कारीगरी पूरी तुमने कर डाली थीं। हर पहलू और कोण-से झाँपकर अपना दावा सिद्ध किया था। उसका स्कूली जलसा था, तो होने देती। गुलाबी साड़ी पहना, पूरी उर्वशी तुमने

रच डाली थी। कितनी सुन्दर और सजीव शीला लग रही थी! क्या वह एक गुड़िया थी, कि तुमने मुझे उसे सौंपते कहा—"लो, अपनी शीलाको!"

मानो वह शीला एक खिलौना थी! और अपरिचित, अनाड़ीके हाथ उसे सौंपते कोई हिचक तुममें न हो! क्या मैं ही एक उसका पारखी था? और शीला जब इनाम पाकर लौट आयी थी, तो तुमने कहा था—"तुम्हारी शीला फर्स्ट निकली। कितनी होशियार है।"

कलाको बाहरी मन अपरिचित भले ही कहना चाहता था, अन्दर दिलमे वह जगह बनाती जा रही थी। वही शीला मुझे चाहिये। तुमसे यही चाहता हूँ भाभी, कि मेरी शीलाको मुझे सौंप दो। सच, वह मेरी ही है। उसका अस्तित्व मेरी गृहस्थीमें रखा दो। अब मैं गृहस्थ बनूंगा। समाजमें अपना स्थान स्थापित करनेकी धुनमें हूँ। तुम शीलासे कुछ कहना नहीं। कुछ भी न पूछ, बहकाकर मेरे पास ले आना। राजीसे वह न आवे तो फुसलाकर ले आना। वह मना नहीं करेगी, उसकी शीलताको मैं बखूबी पहचानता हूँ। वह मेरी एक इक़रार आज है। वह आवेगी, आवेगी—नही, यह प्यार निभाना। तुमसे क्या मैं झूठ बोला करता हूँ? यह कभी नहीं सोचना। प्रेम तो है—एक जरूरत, साधना, तपस्या और जिन्दगीको चालू रखनेका एक साधन।

यह प्रेम एक समझौता है; उसे आदर्श मानना पड़ेगा। तो भी प्रेमका एक पहलू है-अपनी प्रेमिकाको आंखें मूंदे अपने पास खींच लेना। प्रेम कभी अन्धा होता है। पशुत्व आदमीकी

प्रधानता तो है ही। शारीरिकताको बिसारना ढोंग ही होगा। प्रेम गम्भीर व्यापार है!

शीलाको भी यह पत्र सुना देना। कहना—शीला रानी, तुम चली आओ! तुम्हारे बिना मैं अपूर्ण और अधूरा हूँ। यह कमी मुझे निगल रही है। तुम आओ और आकर मेरी प्यासी आत्माको शान्ति दे दो। मेरी तृष्णा बुझा दो। तुम मुझमें हली रहो, और मैं तुममें मिट सकता हूँ। मैं सर्वदा तुमको अपनाये खड़ा हूँ। आज तो एक व्यावहारिकता है। उसे तुम अधिक साथ नहीं लाना। कुछ सङ्कोच जरूरी है—चञ्चलता भी। कुछ तो चुलबुलाहट भी चाहिये। घुलमिलकर ही मर मिटना मैं नहीं चाहता। यह बेकार है—व्यर्थ-सा।

भाभी, फिर भी यदि वह न आना चाहे, जवाब मत देना। मैं उसकी उपेक्षा सह न सकूँगा। मैं यह जानना नहीं चाहता। मैं उसे अपनेमें पा चुका। अधिक कितनी वह मुझे अब चाहिये! उसके लिये अपने सुख-स्वप्न मिटा दूंगा नहीं। उसका आसरा तब भी ताकता रहूँगा। कौन जाने, किस दिन पिघल, अपनी नारी-कोमलतामें उमड़ वह आगे खड़ी हो पुकार बैठे-"आ गयी मैं!" यह देखो तुम। क्या तुम उसे बहका नहीं सकती हो? वह बहुत भावुक लड़की है। उसकी भावुकताको पकड़ कहोगी, मान वह जायगी।

यह तुम निभाना भाभी। तुम अपनी हो, साफ-साफ इसी-लिये लिख दिया है। परदा तुमसे क्या कभी किया, कि आज ही कर लेता? याद होगा न वह दिन, जब तुमने शीलासे कहा था—"सोहनसे तेरी शादी कर देवेंगे।"

शीलाने जबाब नहीं दिया था। वह लजा गयी थी।

फिर तुम बोली थीं—कैसा लगता है, तुझे वह ?

और शीला तो भाग गयी थी। शीलाका विश्वास था कि मैं तुमसे अधिक उसे प्यार न कर सकूँगा। ठीक उसने सोचा था। तब तुम्हारा प्रभाव मुझपर अधिक था। मैंने कभी उसे हटानेकी कोशिश भी नहीं की थी। क्यो मैं बेकार सारी दुनियाभरमें छानबीन करता ? तुम मेरे मन लायक थीं—बस।

शीलाने एक दिन मुझसे कहा था—"मैं भाभीको खूब प्यार करती हूँ।"

"मैं तुमसे ज्यादा !"—जवाब मेरा था।

वह बोली थी—"देखो, झूठ है।"

"सच्ची बात है यह"—मैंने कहा था।

शीला मुरझा गयी थी—चुपचाप। उसे पूरा शक था कि मैं उसका नहीं, तुम्हारा ही हूँ। इसीसे वह समस्या गढ़ने बार-बार पास पहुँच, आगे खड़ी हो, झगड़-झगड़ कर चली जाती थी।

दुनियाँ एक कहानी है; जहाँ एक चीज पाकर और दूसरी चीज भी पाना हम चाहते हैं। और शीला मुझे आज चाहिये। अब तो शीला खूब बड़ी हो गयी होगी—सत्रह सालकी। उसका खाका मैं खींचता हूँ और दिलसे लगा लेता हूँ। बाजार; दूकान-पर सूट खरीदने गया.........सामने रंगीन साड़ी टँगी थी। उसपर आखें अटकीं। सोचा, जब शीला आयेगी तब ले लूँगा, उसपर खूब सजेगी। मार्केटमें नये डिजाइनकी चप्पलें देखीं—

साढ़े-तीन नम्बर, खरीदनेको मन ललचाया। शीलाके पाँवका यही नम्बर था।

कुछ अधिक क्या लिखूँ भाभी? यह मेरा अहसान, तुम सह लेना। मैं तो हूँ मजबूर। पत्र तुम लिखना, शीला उसमें हो।

१५ फरवरी, १९२१ तुम्हारा—

रात्रि ११॥ बजे. सोहन।

❀ ❀ ❀ ❀

सोहन,

इधर दो सालसे तुम्हारी चिट्ठी नहीं आयी। कल उनसे पता पूछा। आज चिट्ठी लिख रही हूँ। पिछले दिनों लगातार बीमार रही। बार-बार तुमको बुलाना चाहती थी। सोचा, नयी नौकरी है, छुट्टी मिले, न मिले। होलीमें जरूर आना। मैं आलसी भी हो गयी हूँ।

नयी बात यहां कोई नहीं। शीलाको तुम जानते हो न? १० तारीखको उसकी शादी हो गयी है। शीला इलाहाबाद चली गयी है।

घरमें सब कुशल है। 'बेबी' अच्छा है। पत्र देना।

१३ फरवरी, १९२१

सुबह ८॥ बजे. तुम्हारी—भाभी।

❀ ❀ ❀ ❀

कल 'लोचन'की पुरानी फाइलें गुदड़ी बाजारसे खरीदकर लाया था। आज अभी-अभी फरवरीकी प्रति खोली थी कि, ये दोनों पत्र मिल गये! दूसरे पत्रमें 'शीला इलाहाबाद चली गयी' के नीचे, लाल पेन्सिलकी मोटी लकीर खिंची थी।

देशभक्त

श्री उषादेवी मित्रा

उसके चारों ओर यौवनका कम्पन हिलोरें मारता, जवानीकी दीवाली आरतीका थाल सजाती, उस प्रज्वलित अग्नि-शिखाके अग्रभागमें जैसे युग-युगकी गाथा क्रीड़ाशील होती।

और अमीर अली—दरिद्रों-सा रहन-सहन, किन्तु अमीरों-सा मन लिये उस प्रज्वलित होली-कुण्डकी ओर दृष्टि निबद्ध किये सोच रहा था—उसी शिखा-सी ही बातको। यों ही वह रात थी—होलीकी एक रात, इसी तरह कमरेकी खिड़कीके सामने बैठा देख रहा था वह, पथपर जल रही थी होली। और तब पीछे सुन पड़ी वह लघु पदध्वनि, नूपुर-सिञ्जन-सी वह ध्वनि। उसने मुड़कर देखा न देखा। मधुकर-सी गुनगुनायी वह अबीर-रङ्गी-सी जरीना—'यहाँ छिपकर बैठी है तू कुलसुम और मैं तुझे खोजती फिर रही हूँ। अरे, तुम-तुम!' एकने दूसरेको देखा निविड़ पलकोंमें घिरी नशीली आँखोंसे। कौन जानता था कि वहीं पलभरका परिचय युग युगके रन्ध्रहीन, छिद्रहीन परिचयकी परिचित लिपिको खोल बैठेगा?

बाहर जल रही थी होलीकी आग और ठीक उसीके सामने, खुली खिड़कीके भीतर रुक गया था वह पलभरके लिए। एक शान्त, नीरव, अविच्छिन्न दृष्टि—लुट गया उस नीरवतामें मनका प्राण निःशेष होकर।

और तब उस होलीकी आग-सी जल उठी वह जरीना अपने घरके कोनेमें—सब बाधा-विपत्तियोंका नाशकर, प्रेमके प्रदीपमें उसी होलीकी रंगतको भरे।

कौन जानता था कि करोड़पतिकी कन्या जरीना विरुद्ध शक्तियोंकी अवहेलना कर उस छोटे पलकी मर्यादाको रख लेगी।

वह और जरीना?—पथके भिखारीको राजसिंहासन जैसे सपना ही है, वैसी ही, बात थी। क्या वह जानता था कि उसकी तरह एक साधारण व्यक्तिकी गृह-लक्ष्मी बन सकेगी—गन्धर्व-लोककी कन्या-सी जरीना—वही जरीना?

जरीना—उसकी जरीना, अभी तीन दिन भी पूरे नहीं हो पाये हैं जरीना उसकी बन गयी है—उसकी, हाँ, एकान्त भावसे उसीकी। अमीरकी धर्मपत्नी जरीना और जरीनाका पति अमीर।

उसके हाथकी मेंहदीमें फागका रंग समा जाता। उसके ओठकी गुलाबीपर गुलाबकी गुलाली लजा जाती, आँखके काजलपर विश्वका निविड अंधकार शरमा जाता। उसकी जरीना। प्रेमकी कथा चुक न पाती, आँखकी भाषा गुमना भूल जाती, रातकी नींद भटकी फिरती, जरीना उसकी और वह जरीनाका—जैसे एक अखण्ड कहानी हो।

अमीर खुली खिड़कीकी ओर देखता फिर सहमकर उठ पड़ता। इतस्ततः विक्षिप्त खुले ट्रंक-बक्सोंको देखता, मनमें मुस-

करावा—इस होलीकी शिखाने स्मृतिके झरोखेको ऐसा खोल दिया कि सफरकी याद भी जाती रही। गाड़ीका वक्त भी निकट है। पर सामान लेना ही क्या है ? देशकी पुकारपर चल पड़ने-वालेको सामानका करना ही क्या है ? छोटा विस्तरका बंडल और एक बेग बस होगा।

और फिर अमीर बेगमें धोती, कुरते रखने लग गया।

(२)

एक विक्षिप्त आँधी-सी पहुँची जरीना—'तुम कहाँ जा रहे हो ?'

'मैं ? हाँ, जा तो रहा हूँ।' कहा अमीरने।

'इन तीन दिनोंमें अघा गये ? पुरानी हो गयी मैं ?'

विपुल विस्मयसे अमीरने पत्नीकी ओर देखा। किस आघात, एवं अन्तर्दाहसे नवविवाहिताके मुखसे ऐसी बातें निकल सकती हैं, इस बातका विचार कर वह सिहर उठा।

'पुरानी ? किन्तु दाम्पत्य प्रेम भी क्या कभी पुराना हुआ है ?······जरूरत ही ऐसी आन पड़ी।'

'मैं नही सुन सकती हूँ ?'

'जरूर। कांग्रेसका अधिवेशन है, मैं वहीं जा रहा हूँ।'

'उस कांग्रेसमें भाग लेनेको जा रहे हो, जो इसलामकी जड़ काटती है।'

अमीर शान्त भावसे हँसा—'तुम गलतीपर हो जरीना, या तुम्हे समझानेवालेकी गलती है। वह एक ऐसी संस्था है—जिसमें ऊँच-नीच, छोटे-बड़ोंका विचार नहीं है। वह सबकी है और सब उसके हैं।'

'तुम भूलमें हो। वह सिर्फ हिन्दुओंकी है।'

'नहीं मेरी रानी। वह राष्ट्रीय महासभा—भारतीयमात्रकी है, सब जातिके लिये उसका दरवाजा खुला है। जनताकी आवाज उसमें गूँजती। जा रहा हूँ अपने भाइयोंकी आवाजमें अपनी आवाज मिलानेके लिए।'

काफिरकी तरह यह कैसी बातें कर रहे हो? तुम उसे मानते हो?'

'जी-जानसे। भारतवासी होकर मैं उसे अस्वीकार करूँ भी कैसे? भूलती क्यों हो जरीना, अपना जन्म इसी हिन्दुस्तानमें हुआ है न। और हिन्दुस्तानका निवासी मैं यदि उसका सेवक हूँ, तो इसमें अचरजकी कौन-सी बात है?'

सिर हिलाती हुई जरीना मृदु-मृदु कहने लगी—'मुझे विस्मय है।'

'किस बातपर?'

जरीनाके पद्मसे सुकोमल कपोलोंपर मधुकी मिठास भर-सी उठी। वह कुछ कह न सकी। उसने लजीले नेत्रोंको फेर लिया।

'कहो जरीना, शर्माना कैसा? और मेरे ही पास? मुझे लगता है जरीना, हम-तुम एक हैं। बीचमें न कोई भँवर है और न रुकावट। कहो, क्या कहना चाहती हो?'

"मैं तुम्हे पलभर भी आँखोंकी ओट नहीं कर सकती। लगता है—मेरी श्वास रुक जायगी, रो-रोकर मैं पागल हो जाऊँगी, मेरी आँखोंकी खुशी नष्ट हो जायगी, दुनियांके उजेलेपर काला परदा पड़ जायगा। और तुम अपनी खुशीसे मुझे छोड़-

कर चले जा रहे हो।' मेंहदी रचे हाथोंको मलती हुई धीरेसे वह बोली।

'ऐसा ?' पलभरके लिए उसने पत्नीकी ओर देखा। तब बिस्तर बाँधता हुआ बोला—'परन्तु जरीना, देशने मुझे गोदमें उठा लिया था पहले, तुम तो पीछे आयीं। मुझपर पहले देशका अधिकार है, उसके बाद तुम्हारा।'

अथक भावसे जरीना उसे देखने लगी—यह व्यक्ति—जो अमृतसे भरी वाणी उड़ेला करता था—उसके कानसे लगकर मीठी-मीठी बातें किया करता था, वही व्यक्ति ऐसे कटु सत्यको विषकी तरह उगलने कैसे लग गया! कहाँ छिपाकर रखा था इसने इन निर्दयी, रूखे शब्दोंको।

पत्नीकी ओर अमीरने गम्भीर स्नेहसे देखा—'दुःख मैं तुम्हें पहुँचाना नहीं चाहता, जरीना।'

अभिमानसे जरीनाने मुँह फेर लिया।

बिस्तर बाँधना छोड़कर अमीर पत्नीके निकट पहुँच गया। बड़े आदर-प्रेमसे उसे अपनी ओर खींचकर बोला—रूठ गयीं ? कहीं दूर थोड़े ही जाना है' ८—१० स्टेशनके बाद ही तो है कांग्रेस नगर। बस—चार छः दिनमें लौट आऊँगा।'

'मैं भी साथ चलूँगी।'—एक हठी बालिका-सी वह बोली।

'चलोगी ?' उसने किंचित् विचार किया और कहा—'तो जल्दी तैयार हो लो'। वक्त कम है। परदेका प्रश्न है नहीं—न तुम्हें न मुझे।'

(३)

'मुसलिमलीग जिन्दाबाद'।—उन्मत्त मुसलमान लाठी ताने

खड़े थे। आग भभक रही थी, मन्दिरोंपर सावर पड़ रहे थे।

'कांग्रेसकी जय' बोलते हुए कुछ हिन्दू भी लाठी फटकार रहे थे। मसजिदोंपर हमले हो रहे थे। दोनों ओर झगड़ा पूर्ण तेजीसे था। तीसरी ओर जैसे इन सबकी उपेक्षा कर उड़ रहा था फागका अबीर।

'मसजिदके सामने बाजा बजाते, फाग गाते हुए हिन्दू निकले। खुद ही तो झगड़ा मोल लेते हैं।'—कोई किसीसे कह रहा था।

'यह सब इनके झगड़ा करनेका बहाना है। हमारे हर त्यो-हारको यह लोग इसी तरह फीका कर देते हैं।'—दूसरी ओर ये शब्द सुनायी दिये। और उन सबके बीचसे निकला अमीरका तांगा।

'मारो मारो।' मुसलमान चिल्ला उठे।

हिन्दुओंका जत्था दूर था।

'ठहरो-ठहरो, कोई मुसलमान भाई है' किसीने कहा।

'हिन्दू है—देखते नहीं—किस बेपर्दगीके साथ जनाना बैठी है। तुर्की टोपी लगाये हुए है सिर्फ हमें धोखेमें डालनेके लिए।'

'उतरो।' किसीने कहा।

इतना कहनेसे पहले ही अमीर उतर पड़ा था।

'तुम मुसलमान हो?'

'हाँ।'

'तो हमारे काममें भाग लो।'

'इस झगड़ेमे?'

'हाँ, लो हथौड़ी, मन्दिर तोड़ो।'

'पागल हो गये हो? यह तुम क्या कर रहे हो?'

'चलाओ हाथ—चलाओ-चलाओ।'

'नहीं।'

'क्या कहा?'

'नहीं। यह मन्दिर एक भारतीयके वास्तविक प्रेम, प्रीति, श्रद्धाका, सचाईका चिह्न, जिसमें कि दुनियांमें रँगे हुए एक विराट आत्माका सिंहासन हो, उस अनन्तके प्रति जिसमें आदमीकी श्रद्धा, पूजा, सम्मान बूँद-बूँद कर चू पड़ा हो,—चाहे वह मसजिद हो या मन्दिर; ऐसे एकको मैं ही नहीं, किन्तु मनुष्य-मात्र नहीं तोड़ सकता है। ऐसा अधिकार उसे है नहीं, हो भी नहीं सकता। नहीं तो आदमीकी श्रद्धा ही व्यर्थ हो जाती है, उसकी सचाईमें जान रह नहीं पाती है। मै ऐसा नहीं कर सकता। साथ ही तुम्हें रोकता हूँ। जिस दिन आदमीकी सचाई लेकर इस बातको तुम समझना चाहोगे, उस दिन तुम्हें अपने-आप समझ आ जायगी। और आजकी इस बर्बरताके लिये तुम्हारी आत्मा लज्जाका अनुभव करने लगेगी।'

'लम्बी-लम्बी बातें करता है। मार गिराओ इस नकली मुसलमानको।' भीड़से आवाज उठी।

'मारो-मारो।'

'मारो इस समाजद्रोहीको।'

'खुशीसे। अकेला मैं, पचासो तुम। कायर पुरुषकी तरह यदि मारना चाहो, तो मार सकते हो। समाजद्रोही कहकर यदि मनको सन्तोष देना चाहो, तो कहो। फिर भी देशद्रोही तो मुझे न कह सकोगे।'

'ऐसी बात? तो लो।'

तनी हुई लाठीको किसीने पकड़ लिया—यार, क्या कर रहे हो ? अपने कासिम अलीके दमाद हैं। कोई अमीरके निकट पहुँच गया। धीरे बोला—क्यों मुफ्तमें अपनी जान दे रहे हो ? दो-चार हाथ मन्दिरमें लगा दो। और चलते बनो।'

'बिगाड़ूँ ? फोड़ूँ ?'

'हाँ-हूँ, बहरे हो क्या ?'

'बड़े जिद्दी हो।'

'मैं ऐसा नहीं कर सकता।'

'बस दो हाथ लगा दो, इसमें अपना नुकसान ही क्या है ?'

'इन हाथोंकी ताकत बनानेके लिए है, बिगाड़नेके लिए नहीं।'

'तो मरे।'

'रास्ता छोड़ो, जाने दो।'

'मार गिराओ इस काफिरको।'

'जाने भी दो, कासिम अलीका दमाद है।'

गाड़ी आगे बढ़ी। जरीनाने रोका—'ठहरो।'

'क्यों ?'—विस्मयसे पूछा अमीरने।

'मोड़ो गाड़ी, मैं तुम्हारे साथ नही जाना चाहती।'

'जरीना—।'

'बस—मेरे बापके घर मुझे पहुँचा दो।'

'परन्तु मैं ठहर न सकूँगा।'

'पहले मुझे घर पहुँचा दो, फिर जहाँ जी चाहे चले जाना।'

क्षुब्ध व्यथासे अमीरने मुँह फेर लिया। गाड़ी एक ओर चल पड़ी।

पतिके सामने पत्नी अड़कर खड़ी थी।

'तुम्हारे लिए मैंने सब कुछ छोड़ा, जानते हो न ?' जरीना पूछ रही थी।

'जानता हूँ जरीना।'

'किन्तु मजहबको नहीं छोड़ सकती।'

'ऐसा करनेके लिए मैंने तो कभी अनुरोध किया नहीं।'

ठहरो, सुनो। उस समाजद्रोहीके घर मैं भी नहीं रह सकती।' एक व्यथासे, एक विस्मयसे अमीरने पत्नीको देखा। 'न मैं उस धर्मद्रोहीको ही अपना पति कह सकती हूँ।'

इस बार अमीर मुसकरा पड़ा-'वही तो एक बात है जरीना, धर्ममात्रके विद्रोहको मैं पाप समझता हूँ।' जरीना अपनी धुनमें कह चली—'यदि मेरे लिए तुम्हारे मनमे जरा-सी भी चाह हो तो·····।'

बाधा देकर अमीर बोला—'हाँ और शायद कभी तुम्हारा मन चाहे, तो चली आना, दरवाजा खुला पाओगी, किन्तु देश-द्रोहीको देखनेकी आशा उस दरवाजेपर कभी न करना।'

आकर्षणी शक्तिका केन्द्र

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा

'भाभी, हवा ठीक लग रही है न ?' फैनको टेबिलपर रखकर उसका कनेक्शन ठीक करते हुए प्रेम-भरे स्वरसे मुस्कराकर पूछा था सुधाकरने। उसके कण्ठकी प्रतिध्वनि गूँज उठी थी कमरेमें और मानों दूर-दूरान्तरसे सैकड़ों भाभी-सम्बोधनोंने दौड़-दौड़कर मेरे अन्तरको एक संगीतसे भर दिया था। इस सम्बोधनने जैसे अन्तरके प्रत्येक कोनेको स्पर्श किया, स्नेहसे लिपटकर चरणोंमें लोट गया और आदर तथा उल्लाससे प्रदक्षिणा करने लगा था! एक अनास्वादित अतृप्त अकांक्षा, नवीन कल्पना शरीरकी प्रत्येक शिराको मथने लगी थी, जाने कितनी नवीन अनुभूतियाँ अन्तरमें भीड़ लगाकर खड़ी हो गयी थीं, और 'भाभी' का सरस मोहक सम्बोधन वायुकी तरंगोंके साथ मिलकर गूँज उठा था।

ऐसी ही तो थी वह एक वैशाखकी पूर्णिमा ! अपने मदिर सौन्दर्यसे नहायी हुई चन्द्र-रश्मियाँ उछल-उछलकर अठखेलियाँ कर रही थीं। भीनी-भीनी हवा, हलके झकोरोंसे खिलती हुई, रजनीगन्धाके फूलोंका मकरन्द बहाती हुई सारे कक्षमे घूम रही थी। शहनाईके मधुर स्वर दिगदिगन्तमें मस्तीसे गूँजकर मेरे शुभ विवाहकी सूचना दे रहे थे। मैं सुसज्जित कमरेमें, बिजलीके जगमगाते हुए आलोकमें, सुन्दर वस्त्राभरणों और फूलोसे लदी मखमली कोचपर बैठी थी। भवनमें रमणियाँ अपने नृत्य और वाद्यमें निरत थीं। हाँ, तभी तो आया था मेरे पास वह पूर्ण विकसित सुन्दर सुधाकर ! 'भाभी' शब्दका स्नेह-सम्बोधन पल-भरमें मेरे मानस पटपर अंकित करने। जैसे हृदयमे कोयलने नवीन बसन्तके समागमकी घोषणा पंचम स्वरसे कर दी हो, श्यामाने प्राचीके हृदयमें मचलती हुई रम्य-ज्योति-किरणका सौन्दर्य गान गा दिया हो। उस पूनोकी निशीथमें उसका वह 'भाभी' स्वर अपनी सारी कोमलता, मधुरता हृदयमें बिखेरते हुए अमृत हो उठा था और मेरा नन्हाँ-सा अनजान हृदय, पता नहीं, वहाँ कहाँ जाकर खो जाना चाह रहाथा—किसी परिचितसे, घनिष्ठसे, अनुभूतसे 'देवर' नामके आकर्षक अस्तित्वमें।

नारी-जीवनमें 'पति-परमेश्वर' के पतित्वकी गुरुतामें छिपी हुई एक कोमल भावना झाँकती है—खुलकर हँसने-बोलनेके लिये एक देवर नामके व्यक्तिमे। कर्तव्य-भारसे लदे हुए दैनिक जीवनके गृह-कलहोंके सूने-सूने निस्तब्ध पलोंमें, पतिके अतिरिक्त एक और हमउम्र साथीके साथ दो घड़ी रसभरी अठखेलियाँ, मीठी चुहल और स्वाभाविक चुलबुलेपनसे भरी छेड़छाड़से सूने वातावरणको

मुखरित कर देनेके प्रवल कांक्षा जागृत होती है। किन्हीं आँखोंमें जीवनकी तृप्तिके लिये सरसता और मनोरंजनके लिये, देवर नामके सच्च प्राणोंकी चंचलता और मादकताकी चाह होती है। केवल पतिसे ही जीवनकी रिक्तता, जीवनकी आवश्यकता नहीं भरी जा सकती। सागरका रंजन केवल एक लहरके सौन्दर्यसे नहीं हो सकता! आकाशको एक चाँदके अमृतका आस्वादन क्या सन्तोष दे सकता है?

नये जीवन-पथपर नई दुनियांमें, नवीन दिशा और नये वातावरणमें प्रवेश करते और यौवनकी पौ फूटते ही नयी उषाकी सुनहरी ज्योति-रेखाके समान जीवन लेकर जग उठनेवाला देवर सुधाकर आया था—अपने 'भाभी' सम्बोधनसे अन्तरको एक युवक-स्पर्श देने। मानसिक अनुभूतिने 'भाभी' सम्बोधनकी नवीनताने विद्युत्-सी उत्पन्न कर दी थी और वह देवर-भाभीका परिचय घनिष्ठताका रूप धारण कर बैठा। मधुकी अज्ञात लज्जाका भाव अभी दूर भी नहीं हुआ कि सुधाकरके सम्मुख अपनेको भूलने लगी। एक नूतन आकर्षक अध्याय प्रारम्भ हो गया। उसके आगमनकी ध्वनि कानमें पड़ते ही चेहरेपर एक आनन्द तथा तृप्तिकी आभा फूटकर उज्ज्वल हो उठती, शिथिल शक्तियाँ लौट आती, नवीन भावनाको लेकर हृदय लहरा उठता—मानों एक अदृश्य शक्ति मुझपर बल-पूर्वक काम करती। घूँघट-पटके झीने आवरणसे झाँकती हुई मेरी दोनों आँखोंसे एक प्रवल प्रेरणा आगे आकर मुझे पीछे ढकेलने लगती और नेत्र-द्वयके सम्मिलन-से ही एक स्वच्छ निर्मल हास्यकी कान्ति बिखर जाती। यौवनकी दीवानगीमें देवरकी छेड़छाड़का क्या कहना? हृदयकी लहराती

हुई सरितामें उमंगोंकी आँधी आने लगी, एक-दूसरेके मनमें बर-बस लाज, झिझक और प्रेमकी व्यथा, टीस, उठने लगी। लप-टती हुई लू-सी लालसायें, छलकता हुआ यौवन, मनमें कोई जादू-सा और आँखोंमें सपनोंका ताना-बाना-सा बुनने लगा। एक अदम्य आग्रहसे नित्य एक-दूसरेके प्रति लुढ़कते चले जा रहे थे। अन्तरमे एक उथल-पुथल लिये हुए एक दिन आ पहुँची निर्मल ज्योत्सना-स्नात, मुस्कराती हुई मधुपूनिम होलीकी एक रंगीन रात। फागुनके मस्तोंकी टोली मस्तीके रागसे कूक उठी, दिशाओंमे मस्तोंकी तान गूँज गयीं। हृदय लोछके साथ थिरक उठे, मादक और मदिर वातावरणमें मानों उन्मत्त पिपासा जाग-रुक हो उठी। उसी मुग्ध स्वप्निय, शीतल यामिनीमें, मोह-विह्वल-पुलक-कम्पित सुधाकर मौजमें गाता हुआ—जाने क्या तेरे घूँघटमें मेरे आँगनमे आया। मैंने अधीरतापूर्वक अवगुण्ठन उठाकर उसकी ओर निहारा। उसके मुखकी अम्लान हँसी और नेत्रोंकी स्निग्ध दृष्टिको निरखकर मेरे अधरोंपर एक हरी हँसी थिरक उठी और वैसे ही लपककर सुधाकरने मेरे गालोपर एक मुट्ठी लाल-लाल गुलाल पोत दिया—दीवानेकी भांति। और फिर जब वह जलपान करने बैठा तो मैंने चुपकेसे पीछे जाकर उसकी पीठ-पर "फूल फ़ार सेल" लिखा हुआ कागजका एक टुकड़ा चिपका दिया और सामने जाकर एक शरारतभरी हँसी हँस दी—ओह कैसे दीवाने थे वे दिन !

दिन निकलते गये.........

प्रीवियसमें वह पढ़ता था। वकील साहबको 'भैय्या' कहा करता था। एक रोज जब वह आया तो वकील साहब बैठे थे।

बोले, "आओ सुधाकर! मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था। चलो, कहीं घूमने चलते हो?"

"कहाँ चलूँ?" सुधाकरने हँसकर पूछा।

"चलो, पार्कमें। आज खेल क्या है?"

"शायद देवदास।"

"चलो चलें।"

"चलिये।"

हमलोग पार्कमे बैठे थे। विवाद छिड़ गया। मैं भी उसमें सम्मिलित थी। सुधाकरने कहा, स्त्रियोंका पुरुषोंके बराबर दर्जा है। बिना पुरुषोंके सम्पर्कमें आये, घरमें बैठे-ही-बैठे, क्या वह कभी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती हैं?"

मैंने उसकी हाँ-मेंहाँ-मिलाया।

वकीलसाहब विपक्षमें थे, उन्होंने कहा,'यह सम्भव ही सम्भव है'।

सुधाकर बोला, "आज पाश्चात्य देशोंकी लड़कियाँ कसरत, लड़ाई, यान-संचालन, नेतृत्व और जितने भी काम हैं, सभीमें पुरुषोंकी समता कर रही हैं।"

वकील साहब कुछ झेंपतेसे कहने लगे, "कुछ भी हो, वह हमारी बराबरी नहीं कर सकतीं! उनका स्थान घर है।"

मैंने कहा, "यह भी कोई बहस है?"

सुधाकर, "तो जनाब, प्रकृतिने उन्हें इतना नीचा नहीं बनाया है, जितना आपने उन्हे कर रखा है। वैदिककालमें भी स्त्रियोंको समत्व प्राप्त था।"

वकील साहब, "तब और बात थी। आज आप देखते हैं कि पाश्चात्य देशोंमें कितना व्यभिचार फैला है?"

सुधाकर, "तो क्या आप समझते हैं, यहाँ कम है ? वहाँ खुलेआम, यहाँ छिपे-चोरी। इतना ही अन्तर है। यहाँका व्यभिचार पाप है, उसे छिपाकर पवित्रताकी पालिश चढ़ायी जाती है। वहाँ अनुभवके तौरपर सद्उद्देश्यसे किया जाता है।"

सुधाकर ठीक हो या ग़लतीपर,—वकील साहबके पास कोई जवाब न था। मैं घड़ी देख बेंचसे उठकर घासपर जा बैठी।

वकील साहबने कहा, "तुम यहांके विवाह-संस्कारके प्रतिकूल होगे ?"

"बिलकुल ! देखते नही, आये दिन कितने अनमेल विवाह होते हैं ?"

"तब भी कितने सफल रहते हैं। वहाँ तो दिनमें दस-दस बार तलाक होते हैं।"

भैय्या, वह सब सच्चाईहीके लिये तो ? यहांकी तरह अनिच्छा होनेपर भी बलात् बँधे रहना तो वे पसन्द नहीं करते। यहाँ तो मैं जानता हूँ, सौ मे सौ बलात् बँधे होते हैं।"

"अच्छा, तुम्हारा विवाह तुम्हारी इच्छानुकूल नही ?"

"सम्भव है, अब न हो। संसारमें, मनुष्यमें और इसीलिये प्रेममें भी परिवर्तन आवश्यक है। मैं इस बातको नहीं मानता कि प्रेम अमर होता है," कहते-कहते सुधाकरने मुझे चुप देखकर मुझे छेड़ा—"क्यो भाभी, तुम्हारी राय क्या है, प्यारके विषयमें ?" वह मुस्कराया।

मैं बोल उठी—हाँ, प्रेम भी परिवर्तनशील है और दाम्पत्य जीवनमे तो कुछ दिनो बाद प्रेम पाखण्ड और निर्जीव हो जाता है।" मैं गम्भीर हो गयी।

वकील साहबने कहा, अच्छा, छोड़ो इस बहसको। चलो, शरबत पिया जाय। तबतक खेलका भी वक्त हो जायगा।"

सिनेमा-हालमें बैठे हुए सुधाकरने जब पारूकी विवाहित अवस्थाका तपस्वी वेश देखा तो रो उठा और मैंने जब देवदासको कलकत्ते जाते देखा तो सिसक उठी। वकील साहब बैठे थे मूकवत्!

इसके बादकी गाथा बड़ी कडुवी है, बड़ी दुखद है। दिन एक-एककर कुछ मास बीते। मेरे दाम्पत्य जीवनमें कुछ आकर्षण न था। प्रेम वहाँ अधिक दिन नहीं ठहरा। उस समय शान्ति-रक्षाके लिये प्रेम कर्तव्य बन गया था और जीवन एक भारीपनेमें और एक रसतासे बीत रहा था।

अब वकील साहबको सुधाकरका आना कुछ बुरा मालूम होता था। वह जब आता तो उससे फिरे-फिरे रहते। एक दिन वकील साहब पार्टीमें गये थे। वह आया तो मैंने उसकी सोचपूर्ण मुद्रा देखकर कहा, "अबकी, कई दिनोंमें आये?"

वह मौन रहा। उसने मेरी ओर व्यथा-भरे नेत्रोंसे देखा।

व्यथासे मैं रो उठी। कहा—"तुम आओ तो रोज़-रोज़ आओ, या बिलकुल मत आओ।"

अबकी वह फूट पड़ा। भरे हुए गलेसे बोला, "न आऊँगा भाभी, अब बिलकुल न आऊँगा। मैं 'तुम्हें' प्यार करता हूँ, इससे तो मैं कभी इनकार नहीं कर सकता। लेकिन क्या किसीको प्रेम करना बुरा होता है? नयी उमरमें तो सभीमें इच्छायें होती हैं। फिर इसे समाज क्यों नहीं सहन करता। कल भइया मुझसे मिले थे। मैं तुम्हारे लिये एक मोतियोका हार खरीद रहा था।

मुझसे उन्होंने बातों-बातोंमें कहा, "तुम्हारे प्रति मेरा व्यवहार अनुचित हो रहा है और मुझे उसे रोकना चाहिये।" व्यथित साँस उसके हृदयमें मँडराने लगी।

मेरा मुंह उतर गया। मैंने अधीर स्वरमें कहा, "तो तुम इसीलिये आना भी बन्द कर दोगे?" मेरा स्वर आँसुओंमें उलझ गया था।

"हाँ, भाभी, आकर तो तुम्हे देखे विना रहा न जायगा। व्यर्थ वेदनाको उत्तेजना मिलेगी।"

कुछ क्षणोंतक दोनों चुप रहे। एक-दूसरेकी मौनताके पीछे झाँकती हुई व्याकुल भावनाओंको पढ़ते रहे।

और फिर?

वह चला गया। मेरे अन्तरमें एक हाहाकार, आँखोंमें आँसुओंका पारावार भरकर वह चला गया!

मेरे मन-प्राणोंको अपनी आकर्षणी शक्तिसे खींचनेवाला 'देवर' जो मुझे 'भाभी' सम्बोधनसे उन्माद-विभोर कर देता था, चला गया!

उसके आगमनका निषेध हुआ था। हाँ, कटु निषेध! निषेधको लाँघनेके लिये जरा भी सहानुभूति, करुणा और आँसू-भरी सहृदयता न मिल सकी—सामने आया केवल नीरस कठोर निषेध।

वातावरण क्षुब्ध था, अपमान और उपेक्षा, व्यथा और दुख मँडरा रहा था। नियमके असह्य बन्धन मुझे दुर्विनीत करने लगे। मैं दुखसे विकल हो पड़ी। मन विद्रोह कर उठा, क्यों? इसमे अपराध ही क्या था। मनुष्यके आत्मा है, मन है, प्राण

है। वह निस्पृह भी तो नहीं रह सकता ? मनमें तृष्णा और क्षुधा तो होती ही है, नसोंमें सिहरन और स्पन्द तो रहते ही हैं, फिर यह प्रत्येक मनुष्यसे, प्रत्येक पगपर नाप-तौलकर व्यवहार करनेकी कैसी भारी, कैसी जटिल समस्या है ? इस समस्यामें पिसकर तो जीवन भार हो जाता है !

लेकिन वह तो चला गया ! अब 'भाभी' की प्रिय पुकार कानोंको नहीं सुनायी पड़ती, 'भाभी' का प्रिय सम्बोधन हृदयकी नस-नसको झंकृत नहीं करता !

उषा प्रतिदिन रोटीका थाल लेकर आती है। संध्या नीले सदनमें दीपक जला जाती है। पर वह नहीं आता ! मैं देखती हूँ, उदास आँखोंकी अपलक दृष्टिसे स्मृतियोंमे विभोर होकर— उस सुदूर क्षितिजकी म्लान रेखातक, पर कुछ नहीं दिखायी देता ! मेरे मनके प्राण रो उठते हैं, उच्छ्वास तड़प उठते हैं। आज वर्षाकी रिमझिममें, जाड़ेकी ठिठुरनमें, गर्मीकी तपनमें, वसन्तकी मादक हरियालीमें 'भाभी' सम्बोधनकी किरण-ज्योति फैलानेवाला मेरा सुधाकर कहाँ है ? बादलोंके टुकड़ोंने उसे कहाँ छिपा दिया है ?

डाकिया

श्री बांकेविहारी भटनागर एम्० ए०

(१)

बीस सालसे मोहन उसी गाँवमें चिट्ठियाँ बाँटा करता। न तो उसे जेठकी धधकती हुई लूकी चिन्ता होती, न भादोंकी पथरीली बौछारों या पूसकी कड़कती शीतकी। गर्मीमें पसीनेसे लथपथ, बरसातमें टूटी छतरीके बल बूँदोंकी मारोको सम्हालता और सर्दीमें फटे कम्बलको कसकर लपेटे वह ठीक समयपर निर्धन धनी सभीके द्वारोपर चिल्ला उठता "बाबूजी! चिट्ठी लेना—" कहींसे सजे सजाये जेन्टलमैन झपटते, कहीं लजीली युवतियाँ किवाड़की ओटसे हाथ फैलाती, कही छोटे-छोटे बालक किलकते हुए दौड़ आते। मोहन मानो सभीको अतुल सम्पत्ति लुटाता। कुछ क्षणोंके लिये एक अपार आनन्दकी सरिता-सी वह निकलती। फिर क्या होता इसे जाननेकी मोहनको छुट्टी न मिलती। कोई पत्रोको पढ़कर रोता; कोई आशा और सुखके स्वर्गमें विचरण करता। पर इससे

मोहनको क्या? वह तो चाभी भरी घड़ीकी भांति अपने कर्त्तव्य-पथ पर टिक-टिक करता चला जाता।

(१)

चिट्ठियोंका बंडल उठाते हुए मोहनने पोस्ट-मास्टर साहवसे पूछा—"वाबूजी! सुनीलचन्द्र कौन हैं? इन्हें तो मैं जानता नहीं।"

"ये स्कूलके टीचर हैं," पोस्टमास्टरने उत्तर दिया, "इनकी चिट्ठियाँ घरपर ही जायेंगी। नई सड़कपर जो नीमका वड़ा-सा पेड़ है उसीके सामने रहते हैं, समझे?"

मोहनकी तो गली-गली छानी पड़ी थी। "जी हां" कहकर उसने उसी क्षण अपना वैग उठा लिया।

× × ×

नई सड़क पहुँचते-पहुँचते मोहनको ग्यारह वज जाते। उस दिन सूर्यदेवका प्रकोप भी वड़ा तीक्ष्ण था। पसीनेकी लसलसाहट और मरोड़ियोंकी चिरमिराहटसे मोहन वेचैन हो रहा था। नीमकी शीतल छायामें पहुँचते ही उसने क्षणभरको रुककर अपना पसीना पोंछा। फिर पीठ सीधी करते हुए उसने पुकारा—"वावूजी! चिट्ठी लेना।"

कुछ समयतक न कोई पत्रोंको लेने ही आया, न कोई उत्तर ही मिला। मोहनने सीढ़ियोंपर वैठकर दो तीन वार और पुकारा।

एक छोटी-सी वालिकाने वाहर निकलकर कहा—"वावूदी, नई हैं। तिथ्थी अमे दे दो।"

मोहनने देखा, एक छोटी-सी कलिका खिली हुई थी; कितनी शुभ्र! कितनी कोमल! मोहन उस भोले-भाले विहँसते सौन्दर्य-

पर विमोहित हो उठा। अपने उदासीन विरक्त हृदय-प्रांगणमें एक नूतन आनन्द-नृत्यका अनुभव करतेहुए उसने चार चिट्ठियाँ उस नन्हें-नन्हे हाथोंपर रख दी। फिर उसने मुग्ध स्वरमें कहा—"इन्हें वाबूजीको जरूर दे देना, भूलना मत।"

"आँ, दलूल दे दूंगी।"

वालिका चली गयी, किन्हीं सुन्दर करोंने भीतरसे द्वार भी वन्द कर लिये। पर मोहन खोया हुआ-सा उन रिक्त द्वार-पटोंको ही देखता रहा।

(३)

"तुम्हारा क्या नाम है वेटी?"

"मीना।"

"क्या? मीना!"

"आँ; मीना।"

"मीना तो वड़ी रानी है; अपने वावूजीका वहुत काम करती है।"

"आँ; मीना वली लानी है।"

उस दिन मीना हर्ष और गर्वसे फूली न समाती थी। बूढ़े डाकियाने उसे रानी कहा था। वावूजीके आते ही उसने कहा—"वावूदी! आद तिर्थीवालेने मुझे लानी कहा था। मैं कल उछे छलवत पिलाऊँगी।"

दूसरे दिन अपनी माँ से लड़-लड़ाकर मीनाने सफेद वताशो-का शरवत वनवाया और वहुत पहिले ही वाहर वैठकर मोहनकी राह देखने लगी। ग्यारह वजे और फिर वारह! धीरे-धीरे एक और दो भी वजे! पर मोहन उस दिन न आया। मीनाने रो-रो-

कर घर सिरपर उठा लिया। सुनील बाबूने लाख समझाया, "बेटी! आज हमारी चिट्ठी नहीं आयी होगी", पर मीना न मानी। वह बाहर ही अपनी जगहपर बैठी-बैठी रोती रही।

उस दिन इतवार था, यह किसीको ध्यान ही न रहा। ठीक चार बजे आकर मोहनने पुकारा—"मीना, चिट्ठी लेना।" निराश बालिका सहसा कली-सी खिल उठी। एक हाथमें शरबतका ग्लास लिए वह गिरती-पड़ती बड़ी शीघ्रतासे बाहर भागी। उस दिन मोहनने बैठकर मीनाकी मीठी-मीठी शिकायतें सुनीं। जितनी मिठास उस शरबतके ग्लासमें थी उससे कहीं अधिक मीनाकी उन भोलीभाली क्रोधसे भरी रसीली बातोंमें थी।—मोहन चिट्ठियाँ बाँटना भूल गया।

× × ×

दिन-प्रति-दिन मोहन और मीना प्रेमके अनन्त पथपर बढ़ते गये। निशीथके एकान्त प्रहरमें, जब सारा विश्व निद्राकी सुखमयी गोदमें विभोर पड़ा रहता, मोहन अपनी टूटी चारपाईपर लेटा-लेटा अतीतकी सुनहली चित्रावलियाँ निरखता। "मीना! उसे भी तो सब मीना ही कहते। ऐसी ही सुन्दर थी, ऐसी ही भोली-भाली, ऐसी ही कोमल।" एक-एककर सहस्रों चित्र आँखोंके सामने नाच उठते। उस स्वप्निल संसारमें विचरण करता-करता मोहन अपनी आँखें बन्द कर लेता। धीरे-धीरे निद्रा उसे अबोध बना देती।

× × ×

सुनील बाबूके नाम कोई-न-कोई पत्र प्रतिदिन अवश्य आता। मोहन कभी अपनी बगियामेंसे छोटे-छोटे अमरूद तोड़ता, कभी

बाजारसे मीठे बेर लेता। मीना उन्हे बड़े प्रेमसे खाती, कभी-कभी अपना जूठन मोहनको भी खिलाती। मोहन उन जूठे फलोंसे अमृतका आस्वादन पाता, उन्हें खा-खाकर फूला न समाता। माता-पिता भी मीनाके कौतुकोको देख-देखकर स्वर्गका अनुभव करते।

× × ×

दो वर्ष बीत गये। मीनाकी बढ़ती हुई आयुने उसके हृदयमे पली हुई स्नेहलताको सींचकर और भी सुदृढ़ बना दिया। मीना अब तुतलाती नही थी, मोहनको वह अब तित्थीवाला नहीं कहती। मोहन अब उसका बाबा था और वह उसकी बेटी। माता-पितासे भी अधिक स्नेह वह मोहनसे करती। उसके साथ खेलते-खेलते उसे खाने-पीनेतककी सुध न रहती। मोहन भी अपने अवकाशका समय अब वही बिताता।

(४)

कुम्हारके चक्र की नाई प्रकृति निरन्तर नर्तन करती रहती है। विश्वके एक कोनेको जब उषापति अपनी उज्ज्वल किरणोंसे आलोकित करते है, जगत्का दूसरा भाग ठीक उसी समय निविड़ कालिमाकी ओटमें छिपा रहता है। क्रमशः अन्धकारमें प्रकाश आता है और प्रकाशमे अन्धकार। निखिल संसार एक अनित्य जीवकी भांति भटकता फिरता है। सुख और दुःख मनुष्यके अन्तर प्रदेशमे क्षणिक झंझावात बना, फिर न मालूम किस अनन्तमे विलीन हो जाते हैं। मोहनके शुष्क हृदय-प्रदेशमें आज दुखकी सरिता बहती थी। उस दुग्धकी पवित्र धारामे लालसाओंकी न मालूम कितनी रंगीन मछलियाँ उछलती फिरती। किसे

ज्ञात था कि यह सारा वैभव विश्वकी अनित्य नाट्य-शालाका एक छोटा-सा अभिनय-मात्र है।

सुनील बाबूने हृदयपर पत्थर धरकर कहा—"मोहन अब हम चले जायँगे।"

"कहाँ बाबूजी ?" मोहनने घबराकर पूछा।

"एक दूसरी नौकरीपर। यहाँ अस्सी रुपयोंपर कबतक पड़े रहते मोहन ? अब मुझे ढाई-सौकी जगह मिल गयी है।'

मोहन खोया-सा खड़ा रहा। उसकी समझमें न आया, हँसे या रोवे। उसका सोनेका संसार लुटा जा रहा था; उसके जीवनका अमृत छिना जा रहा था। पर क्या सुनील बाबूकी इस महान् उन्नतिपर वह उन्हें बधाई तक न दे ?

मोहनने अपने क्षुभित हृदयमें अनुपम साहसका संचार करते हुए कहा—"बधाई बाबूजी ! बधाई। आपके इस बढ़तीपर लाखों बधाई।"

कहते-कहते मोहनकी आँखें भर आयी। उसे मालूम होता मानो कोई उसका हृदय निकाले ले रहा है। उसे मालूम होता मानो एक असह्य पीड़ा उसके अंग-अंगसे, उसके रोम-रोमसे उसके प्राणको खींचे ले रही है। शोक और निराशाकी चोटसे नाचते हुए उसने एक अद्भुत स्वरसे पूछा—"कब जाओगे बाबूजी ?"

"दो ही तीन दिनोंमें मोहन।"

"और मीनाको भी ले जाओगे ?"

सुनील बाबू इसका क्या उत्तर देते ? उनकी आँखें छलछला आयीं। जिस दिन मीना मोहनसे विलग हुई थी उसे पता न था

कि उनका वियोग चिरस्थायी होगा। सुनील बाबू उसकी हठीली प्रकृतिको जानते थे। उन्होंने उससे सारी बातें छिपा ली थीं।

चलते समय मीनाने मोहनसे पूछा—"मोहन बाबा, तुम भी हमारे साथ चलोगे न ?"

"हाँ, बेटी मैं तुम्हारी चिट्ठियाँ लेकर आऊँगा" बूढ़ेने उसे बहलानेके लिये कहा।

मीना बड़ी प्रसन्न थी। मोहन बाबा उसकी चिट्ठियाँ वहाँ भी लाएँगे, वहाँ भी वह उससे घंटो बैठकर खेलेंगे।—इनसे अधिक सुखमयी कल्पना मीना क्या कर सकती थी।

पर मोहनके हृदयमें आग धधक रही थी। मीना उसके अन्धकारमय जीवनमें आलोक बनकर आयी थी; अपनी रजत-रश्मियोंमे अतीतके सारे सुख और शौर्यका भाण्डार भर लायी थी। बूढ़ेने क्षणभरको भी न सोचा था कि सूर्य सदैव एक ही स्थलको प्रकाशित नही करता, दीपक निरन्तर अपनी ज्योति अमर नही रखता। आज वह भीषण वास्तविकताके सम्मुख खड़ा था। कालिमासे भी अधिक काली निराशा-पयोधिकी विकराल लहरें बड़ी तीव्र गर्जनसे टकरा रही थीं। मोहन एक निस्सहाय पथिककी भांति उस असीम दुकूलपर कोमल लतिका-सा कॉप रहा था। वायुका दूसरा झोका उसे कहॉ उड़ा ले जाय, उसे पता न था।

× × ×

मीना चली गयी और अपने साथ लेती गयी मोहनका दो वर्षोंसे संचय किया हुआ अतुल वैभव। अभागा क्षणभरमें ही लुट

गया। उस खोयी निधिकी झलक भी, उसे मिल पाएगी, इसकी वह कल्पनातक न कर सका।

(५)

सुनील बाबूने आगरा पहुँचते ही पोस्ट-आफिसको यह सूचना दे दी थी कि उनकी चिट्ठियाँ घरपर कभी न भेजी जायँ। वे जानते थे कि डाकियाको देखकर मीना मोहनकी यादमें पागल बन जावेगी। इसीलिये जब और दिनोंकी भांति मीना मोहनकी प्रतीक्षामें बाहर जाकर बैठी तो सुनील बाबूने उसे बहलानेके लिये कहा—"मीना! मोहन तो बड़ी दूरसे चिट्ठियाँ लाएगा! उसे तो आनेमें कई दिन लगेंगे।"—पिताने देखा, पुत्रीके चमकते हुए मुखचन्द्रपर कृष्ण मेघोंकी अँधियारी घिर आयी। उनके हृदयको बड़ी ठेस लगी। पर उन्होंने मीनाको और बातोंमें लगा लिया।

मीना अभी सांसारिक घातोंसे बहुत दूर थी। मोहन बाबाकी सुध उसे रह-रह कर आती। दिनमें सहस्रों बार वह अपनी माँ से पूछती—"मोहन बाबा हमारी चिट्ठियाँ कब लावेंगे, "माँ!" "अब तो वह आधी दूर आ गये होंगे, बेटी!", जननी बड़े प्रेमसे समझाती। मीना इसी आशा और प्रतीक्षामें अपने बाल-हृदयको भुला लेती। उसे कभी भी आशंका न होती कि माता-पिता उससे उसके बाबाको छीन रहे हैं। कच्ची मिट्टी पर बने हुए संकेतोंको मिटानेमे कितनी देर लगती है? थोड़े ही प्रयाससे सुनील बाबूने मीनाके हृदयस्थलसे मोहनकी स्मृतिको धो बहाया। नित्य नयी क्रीड़ा-सामग्रियोंमें, क्षण-क्षणके माता-पिताके दुलारमें वह अपने बाबाको भुला बैठी।

× × ×

दो वर्ष और बीत गये। हर दसवें पन्द्रहवें सुनील बाबू मोहनको पत्र लिखते रहते, उनमें वे मीनाकी मधुर अठखेलियोका वर्णन करते और मोहनकी सान्त्वनाके लिये यह भी लिखते कि मीना उसकी यादमें मतवाली-सी रहती है। उत्तरमें मोहन भी अपने हृदयकी उमंगोंसे पृष्ठके-पृष्ठ भर डालता। पर वे मीना-तक न पहुँच पाते।

× × ×

मोहनका शरीर अब थक गया था। चिट्ठियोंके बाँटनेमें अब उसे बहुत कष्ट होता था। सरकारने उसकी अवस्थाको देखकर उसकी पेन्सन भी स्वीकृत कर ली थी। पर न मालूम क्यो मोहनने कह-सुनकर पाँच सालके लिये अपनी नौकरी और बढ़वा ली थी। लोग कहते, अब मोहन कभी सत्तू ही खाकर रह जाता है, तो कभी चने ही। अपनी आयका सर्वस्व धन वह पोष्ट-आफिसमे एकत्र करता जाता। क्यों? किसके लिये? लोग सोच-सोचकर हँसा करते, कभी-कभी कह भी उठते—"ओ भैया! मोहन अपनी चिता सोनेकी बनवाएगा।" मोहन उनकी बातोंको सुन-सुनकर मुस्कराया करता और......रोता भी।

(६)

सुनील बाबूने मोहनको पत्र लिखा था। मोहन उसे बैठा हुआ पढ़ रहा था—"मोहन बाबाको सुनीलकी नमस्ते पहुँचे।

बाबा! २१ नवम्बरको तुम्हारी मीना अपना सोलहवाँ साल पूरा कर लेगी। उसी दिन हम उसे चिरंजीवी कौशलकिशोरके हाथो सौंपकर अपना कन्या-भार उतारेंगे। बाबा! क्या तुम उस दिन मीनाको आशीर्वाद देने न आओगे?" तुम्हारा—सुनील।

पत्रके साथ-ही-साथ वीस रुपयोंका मनीआर्डर भी आया था।

जिस दिन मीना मोहनसे विलग हुई थी, उस दिन वह लगभग आठ सालकी थी। अब वह शीघ्र ही अपना सोलहवाँ वर्ष पूरा कर लेगी। आठ वर्षोंके इस विशाल अन्तरने मीनाको क्यासे क्या वना दिया होगा। उस भोले-भाले हँसते मुखड़ेपर अब लज्जाकी लाली छायी होगी, अंग-प्रत्यंगमें यौवन लहरियाँ लेता होगा। अपने जीवनके उस नूतन स्वरूपमें वह कैसी परी-सी जान पड़ती होगी। मोहन उन सुखमय स्वप्नोंमें विभोर हो उठा।

× × ×

इक्कीसवीं नवम्वर थी। सुनील वावूका विशाल भवन स्वर्गपुरी वन रहा था सम्वन्धियोंका सुखप्रद जमघट था, सजावटकी अनुपम छटा। बूढ़े मोहनने कल्पना भी न की होगी कि सुनील वावू अव इन्द्रके सिंहासन पर आरूढ़ थे।

मोहनने स्टेशनसे वाहर निकलकर देखा, सात-आठ अच्छीसे-अच्छी मोटरें खड़ी हैं, उनपर वड़े मोटे-मोटे अक्षरोंमे लिखा है—"सुनीलचन्द्र गुप्त"। अपनी लकड़ीके वल आगे वढ़ते हुए मोहनने एक ड्राइवरसे पूछा—"क्या आप वावू सुनीलचन्द्रको जानते हैं?"

"हाँ-हाँ! आप लखपतसे तो नहीं आये हैं?"

"जी हाँ; मैं वहींसे आया हूँ।"

ड्राइवरने पीछे हटते हुए झुककर सलाम किया; फिर मोटरका द्वार खोलते हुए वोला—"हुजूर, वैठिये हम आपको अभी पहुँचाते हैं।"

मोहन भौचक्का-सा मोटरमें जा वैठा। वैठते ही मोटर भाग

चली। बूढ़ा अपने क्षीण शरीरको बड़ी कठिनाईसे सम्हाल पाया।

सुनील बाबूने कई दिनोंतक मोहनके आनेकी प्रतीक्षा की थी। उन्होंने ड्राइवरोंसे कह रक्खा था कि मोहनको बड़े आदर और सम्मानसे लावें। पर जब २०वीकी अन्तिम गाड़ी भी निकल गयी तो वे निराश हो बैठे।

मोटरका हार्न सुनकर जैसे ही सुनील बाबू कमरेसे बाहर निकले, उन्होंने देखा—मोहन बाबा कमर झुकाये लाठीके बल उनकी ओर बढ़ रहे हैं। सहसा वे उन्हें पहचान न पाये। पर अनुमान करते ही वे दोनो हाथ फैलाये पागलसे दौड़े, मोहनके पैरोंको पकड़कर बोले—"बाबा! तुमने तो बड़ी राह दिखायी। आओ भीतर आओ।"

मोहनके आदर-सत्कारमें नौकरपर नौकर जुट गये। सुनील बाबू उसी क्षण दौड़े-दौड़े घरमें गये। उन्होंने मीनाको बुलाकर कहा—"अरी मीना! तेरे मोहन बाबा आये हैं।" दस दिन पहलेहीसे उन्होने मोहनके आनेकी सूचना दे दी थी। वे जानते थे कि मीना अब एक अबोध कच्ची बालिका नही रह गयी थी। वे जानते थे कि उसकी बचपनकी सारी चंचलता, सारा हठ अब उससे वर्षों पीछे रह गया था। अब भी उसे मोहनसे छिपाकर रखनेका उन्हें साहस न हुआ। मीनाके विवाहका आनन्द मोहन बिना अधूरा ही रह जाता, इसीलिये उन्होंने मोहनको बुला भेजा था।

मोहन जब नहा-धोकर निश्चिन्त हुआ तो सुनील बाबू उसे बड़े कमरेमें ले गये। वहाँ जाकर उन्होने पुकारा—"मीना!"

मीना आयी और छिपकली-सी किवाड़के पीछे चिपट गयी। सुनील बाबूने स्नेहसे कहा—"यहाँ आओ, बेटी।"

लज्जा और भयके कारण मीनाको आगे बढ़नेका साहस न होता था। वह काठकी पुतली-सी ज्यों-की-त्यों खड़ी रही।

सुनील बाबूने समझाते हुए कहा—"बेटी मीना! इतना पढ़-लिखकर भी लाज? देखो तो तुम्हारे मोहन बाबा कितनी दूरसे आये हैं? इनसे बोलोगी भी नहीं? इन्होंने तो तुम्हें गोदीमें खेलाया है। इनसे कैसी लाज? जाओ, बाबाके लिये कुछ मिठाई और नमकीन तो ले आओ।"

पैरोंसे नूपुरकी ध्वनि आयी। मीना बड़ी तीव्र गतिसे भागी। कुछ ही क्षणों बाद नूपुर फिर बजे! मीना कंचनसे करोंमें दो सुन्दर प्लेटोंको लिये द्वारतक आकर टिक गयी। लज्जाने पाँव जकड़ लिये।

मोहनने दूरसे ही देखा—एक गुलाबका फूल खिला हुआ है, उसके पत्ते-पत्तेमें, रग-रगमें यौवन थिरक रहा है।

सुनील बाबू उठकर मीनाको बलात् पकड़ लाये। उन्होंने कहा—"बाबाको प्रणाम करो।"

मीनाने प्लेटोंको पास ही रख दिया। लज्जा और संकोचसे सिकुड़ते हुए उसने अपना सिर मोहनके पैरोंपर रख दिया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वयं देवी परब्रह्म-परमात्माकी आराधनामें लीन हों।

वह मोहनके हर्ष और उन्मादकी पराकाष्ठा थी। विह्वल जिह्वा आशीर्वादका एक भी शब्द न निकाल पायी। पर उसके काँपते

हुए करोंने उस देव-कन्याके मस्तकको छुआ। आँखें हृदयके आशीर्वादको घुला-घुलाकर उसके केशोंको सींचने लगी।

न जाने कबतक मीना मोहनके पैरोंमें पड़ी रही; न मालूम कबतक मोहन अपनी आशिषधारासे मीनाके सौभाग्यको स्वच्छ-तर बनाता रहा।

× × ×

मोहनके दुर्बल हृदयमें इस सुखको अधिक सहनेकी क्षमता न थी। जिस समय सुनील बाबू विवाहकी तैयारियोंमें संलग्न थे, मोहनने बैठकर एक लम्बा-सा पत्र लिखा, फिर उसे मखमलके डिब्बेमें बन्द किया। दोनोंको एक सुन्दर कपड़ेमें लपेटकर उसने सुनील बाबूको बुलाकर कहा—"बाबूजी! मुझसे एक प्रण करो।"

"क्या बाबा? पहले कुछ कहो तो।"

"नही पहले प्रण करो।"

"क्या मैंने कभी तुम्हारी कोई बात टाली है?"

"अच्छा लो, इस कपड़ेको उस समय खोलना जब मीना सिंहासनपर बैठकर अपने सौभाग्य-सिन्दूरकी तैयारी करे।"

"ऐसी इसमे क्या चीज़ है?"

"उसी समय देख लेना।"

सुनील बाबू विवाहके कामोंमें लीन हो गये और मोहनने सन्तोषकी साँस ली।

× × ×

उधर मीना सिंहासनपर बैठी अपने नूतन जीवनकी प्रतीक्षा कर रही थी, इधर सुनील बाबू जल्दी-जल्दी मोहनकी दी हुई

गठरी खोल रहे थे। सुनील बाबूने देखा डिब्बेमें एक अद्वितीय लावण्यसे दमकता हुआ अनुपम हार है। वे उसके मूल्यका अनुमान न कर सके।

साथ ही एक लम्बा-सा पत्र भी था। सुनील बाबू उसे आँखें फाड़-फाड़कर पढ़ने लगे।—उसका अन्तिम भाग कुछ इस प्रकार था......"उस भीषण प्रलय रात्रिके बाद क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम। स्यात् महादेवी यमुनाने उन्हें अपने अंचलमें सदैवके लिये छिपा लिया।

बाबूजी ! उसका भी नाम मीना था। आज यदि वह जीवित होती तो इतनी ही बड़ी, इतनी ही स्वरूपशीला और इतनी ही छविमान होती। यह हार उसीकी स्मृतिमें एक तुच्छ भेंटमात्र है। आज दस वर्षोंसे पैसा-पैसा जोड़कर मैं इसे बनवा पाया हूँ। विवाहके पहले इसे मीनाके गलेमें डाल देना। यह उसके सौभाग्यकी रक्षा करेगा ?"

सुनील बाबूके नेत्रोंके सम्मुख एक भयंकर अँधियारी छा गयी। उस निविड़ कालिमामें उन्हें उन दृश्योंका नाचता हुआ प्रकाश दीखा जब उन्होंने छोटी-सी मीनाको यमुनाकी गोदसे उठाया था, जब वे प्रयत्न करके भी उसकी जननीको न बचा पाये थे।

एक विचित्र पागलपनमें सुनील बाबूने बाहर जाकर पुकारा "मोहन बाबा !" पर मोहन बाबाका कहीं भी पता न था। उनके बार-बार पुकारनेपर भी किसीने उत्तर न दिया। वे पागलोंकी भांति इधर उधर घूम-घूमकर चिल्लाने लगे—"मोहन बाबा ! मोहन बाबा ! तुम कहाँ गये ! आओ-आओ, अपनी बेटी

मीना......" उसी क्षण पुरोहितने आकर कहा—बाबूजी! चलिये, मुहूर्त निकला जा रहा है।"

सुनील बाबू मानो सोतेसे जागे। उन्होंने नौकरोंसे कहा—"जाओ, जल्दीसे मोहन बाबाको ढूँढ़कर लाओ।" फिर वे मण्डपमें चले गये।

× × ×

विवाहके कामोमे संलग्न रहते हुए भी सुनील बाबूने मोहनकी पूरी खोज करायी पर बूढ़ा उन्हें न मिल सका। हाँ, विदासे एक दिन पूर्व जब मीना खड़ी-खड़ी नगरके भिक्षुकोंको दान-प्रदान कर रही थी, दो प्यासी आँखोने उस चन्द्रमाके स्वरूपको देखा और देखा विद्युत्से भी अधिक चमकते हुए उस हारको जो उसके उर-स्थलको चूम-चूमकर उसके सौभाग्यकी रक्षा कर रहा था।

× × ×

पिताने चाहा पुत्रीके नेत्रोंके सम्मुखसे छद्मका अवगुण्ठन हटा दे। पर मीनाके बने बनाये स्वर्ण-संसारको तोड़नेका उसे साहस न हुआ।
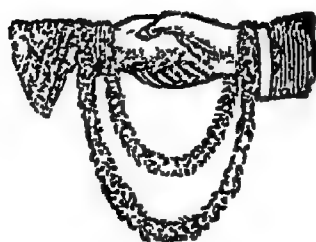
गायक

श्री करुण

वह गायक था और कवि भी।

उसकी कविता सुन्दर एवं कोमल भावोंसे ओत-प्रोत होती थी। गायनद्वारा वह निर्जीव शब्दोंमें जान डाल देता था। भाव साकार हो—सजीव हो श्रोताके मानसमें मधुर लास्य करने लगते थे।

उसकी प्रकृति कोमल तथा शृंगार-प्रधान थी। जैसे सुन्दर उसके भाव थे भगवानने उसे रूप भी वैसा ही दिया था। बलिष्ट परन्तु कोमल शरीर और वर्ण, उन्नत ललाट, कोमल आँखें तथा घुँघराले बाल।

वह भ्रमणशील था। एक दिन अपनी वीणा ले देशाटनको निकल पड़ा।

उसकी वीणामें जादू था। उसके गलेमें चमत्कार था। श्रोता मुग्ध हो जाते थे।

—और वह राजकुमारी थी, मधुपुरके विशाल राज्यकी। कुसुम-सी सुन्दर, पराग-सी कोमल।

उसे संगीतसे बड़ा प्रेम था। वह दिन-रात संगीतमें रत रहती थी और स्वयं संगीत-कुशल थी।

भ्रमण करते-करते एक दिन गायक मधुपुर पहुँचा।

आज वह क्लान्त था और खिन्न भी। आज रह-रहकर उसे देशकी याद—स्वजनोंका स्मरण आ रहा था। उसके हृदयपर विषादका हल्का आवरण-सा पड़ा था।

उसे एक दुख भी था—एक निराशा-सी। उसकी कलाका आदर तो हुआ था, परन्तु वह तो कुछ और ही चाहता था। कोई सुन्दर मानव उसकी वीणा सुनकर, उसका गान सुनकर, भाव-विह्वल हो उसका हो जाये। कितने प्रदेश, कितनी नदियाँ उसने पीछे छोड़ दीं, परन्तु कोई उसे ऐसा—उसके मनका मानव न मिला।

यात्राकी क्लान्ति दूर करनेके लिए वह सो गया। जब सोकर उठा तो सूर्यास्तमें अधिक विलम्ब नहीं था। अपनी वीणा ले वह नगरके बाहर सरिताकी ओर चला।

स्नानके उपरान्त स्वस्थ हो, जब वह उपासना करने बैठा तो सूर्य क्षितिजपर पहुँच चुके थे। प्रतीचीके आनन्दसे प्रकृति हँस रही थी। एक मधुर हास्य, सरिताकी अनुरंजित लहरें लहरा रही थीं। आकाशमें मनोरम आभाएँ बिखर रही थीं। वायु हर्षोच्छ्वास करती हुई बसन्त-आगमनका सन्देश दे रही थी। कछारमें सरसोंके पीले-पीले खेत वायुमे लहरा रहे थे। रंगीन सन्ध्या मन्द-मन्द मुस्कराती हुई आ रही थी।

वह संगीतमें ही उपासना करता था। वह कुछ देरतक उस मनोहर बेलाकी मनोमुग्धकारी छबि देखता रहा। यह एक क्रिया

थी जिसके द्वारा वह एकाग्रता लाभ करता था। यह उसके उपासनाकी भूमिका थी। सौन्दर्यानुभूतिसे जब उस हृदयके तार छिड़ जाते थे तब वह वीणाके तार छेड़ देता था।

उसने तार छेड़ा और नेत्र बन्द कर श्याम-कल्याणमे ॐ-नाद करने लगा। ओ...म्! आवाहन-ध्वनियाँ उसके अन्तस्तलसे निकल, वायुमें तरंगित हो, अनन्तमें लीन होने लगीं।

उपासना समाप्त हुई। क्रमशः वह लौकिक वातावरणमें आया। और प्रफुल्ल-मन संध्याकी शोभा निरखने लगा। आनन्द-विभोर हो उसने फिर वीणा छेड़ी और स्व-रचित एक बसन्त-गीत गाने लगा।

राजकुमारी उस दिन नौका-विहारको गयी थी। कुमारीके कानोंमें गानकी दुरागत ध्वनि सुनायी पड़ी। सखियोंको चुप रहनेका आदेश दे वह ध्यानपूर्वक सुनने लगी। इस अस्पष्ट गान-ध्वनिमें उसने एक मधुर आकर्षणका अनुभव किया। 'शान्ति' की आज्ञा दे वह नौकाके अगले छोरपर जा स्पष्ट सुननेकी चेष्टामे रत हो गयी।

कृष्ण द्वितीयाका मनोहर चन्द्र क्षितिजसे मन्द-मन्द उठ रहा था। हल्की-हल्की चन्द्रिका निखर रही थी। कुछ दूर बहनेपर कुमारीने देखा किनारेपर कोई स्वेत वस्त्र-धारी बैठा गा रहा है। ध्वनि क्रमशः स्पष्टतर हो रही थी। उस विशुद्ध संगीत—उस भाव-भरे स्वरको—सुनकर कुमारी मुग्ध हो गयी। हृदयमें मृदुभाव उठने लगे—प्राण पुलकित हो गये।

गान समाप्त हुआ। नौका मन्द-मन्द बहते कुछ आगे निकल गयी। कुमारीने सहसा चौंककर, नौका लौटा किनारेपर लगानेकी आज्ञा दी।

गायकने दूसरा गान छेड़ा। उसने कुमारीकी नौका नहीं देखी थी। वह भाव-मग्न हो, नेत्र बन्द किये गा रहा था।

अपनी दो सखियोंको ले वह गायककी ओर चली और कुछ दूरपर रुककर सुनने लगी। उसे वह गान-वह स्वर-वीणाकी वह मधुर झंकार चिरपरिचित-सी लग रही थी। हृदयमें अजान गायकके प्रति एक मधुर आकर्षणकी अनुभूति हो रही थी।

गान समाप्त होनेपर कुमारीने अपनी एक सखीको गायकके पास परिचय जाननेके हेतु भेजा। और क्षणभर बाद ही, हृदयकी एक मधुर अशान्तिसे प्रेरित हो, स्वयं भी पीछे चल पड़ी।

"तुम कौन हो, सुन्दर गायक!" सखीने पूछा। वह चौंक पड़ा। सरिताके उस नीरव एकान्तमे एक सुन्दरी प्रश्न कर रही है—"तुम कौन हो—?"

"तुम कौन हो, बाले", हठात् उसने प्रति-प्रश्न किया।

"मैं इस देशके राजकुमारीकी सखी हूँ। और तुम कौन हो ?"

"मैं गायक हूँ," और उसके अधरोंपर स्वयं ही मुसकान खिल पड़ी।

मन्द गतिसे आ, कुमारी सखीके पीछे खड़ी हो गयी। चाँदनीके अंचलमें उसने गायकको देखा। सहसा हृदयमें नेह ढुलक पड़ा। मानसके कण-कणमें अनुराग बिखर गया।

स्पन्दित स्वरमें बोल उठी—"अति मधुर गाते हो, गायक! किस देशसे आ रहे हो ?" कहनेके बाद उसका हृदय अधिक बेगसे कम्पित हो उठा।

गायक इस वीणा-विनिन्दत स्वरको सुनकर चौंक पड़ा।

चन्द्रिकाके कोमल प्रकाशमें उसने कुमारीके कमनीय मुखको देखा। हृदय आन्दोलित हो उठा ! उसकी कल्पनाकी सजीव मूर्ति ! अवाक् हो देखने लगा।

पहली सखी कुमारीको आयी देख, चकित स्वरमें बोली, "कुमारी !"

गायकका ध्यान भंग हुआ। उसने उठकर अभिवादन कर कहा—"मैं उस देशसे आ रहा हूँ कुमारी, जहाँ—"और स्वप्निल नेत्रोंसे उसे देखने लगा। वह कहने जा रहा था—"जहाँ कल्पना साकार नही होती, जहाँ ऐसे अनुपम नेत्रोंवाली तुम-सी सुन्दर बालाएँ नहीं होतीं।" परन्तु रुक गया और अपने इस शृंगारात्मक भावपर स्वयं मुस्करा पड़ा।

सरोवरके शांत जलमें कंकड़ फेंक देनेसे जिस प्रकार मन्द-मन्द लहरें उत्पन्न हो गोलाकार फैलने लगती हैं, उसी प्रकार उसके हृदय-मानसमें आनन्द लहरियाँ फैल रही थी। उसकी अन्यतम साध, उसकी चिर-आशा पूर्ण हुई। उसकी कल्पनाकी साकार मूर्ति मिल गयी। आँखें जिसके लिये ललच रही थीं, युग-युगसे जिसकी प्रतीक्षामें वह विकल था, उसे उसने देख लिया। हाँ, यही तो है उसके कल्पनाकी साकार, सजीव एवं चिरपरिचित मानव-मूर्ति। उसका (मानवका) कोमल रूप।

सभा-शिष्ट गायकने अपने भाव बटोरते हुए कहा—"राज-कुमारीद्वारा प्रशंसित हो मैं धन्य हो गया।"

कुमारीने एक सखीसे कुछ कहा। वह बोली—"कुमारीकी इच्छा एक गान सुननेकी है। गाओगे गायक ?"

कुमारी एक शिलापर बैठ गयी। गायकने गाया—

युग-युगकी आस,—
आज पूर्ण हुई ।
युग-युगकी आस......

आज गायकने जैसा गाया, कभी नहीं गाया था । गान समाप्त हुआ । सब निस्तब्ध थे । शून्यमें ध्वनि गूँज रही थी—युग-युगकी आस......

अन्तमें एक सखीने कहा—"कुमारी, विलम्ब—"

निस्तब्धता भंग हुई ।

"गायक !"

"कुमारी !"

"धन्यवाद—" और उँगलीसे एक अँगूठी उतारकर, प्रकम्पित एवं मन्द स्वरमें, "इसे कलाका पुरष्कार न—" वह सहसा अशांत हो उठी ।

उसने स्पन्दित हृदय तथा कम्पित करोंसे ले लिया । इस भावसे मानों देवताका वरदान ग्रहण कर रहा हो ।

"—चलो पद्मा विलम्ब हो गया," और चली गयी शीघ्रतासे । गायक स्वप्नावस्थित-सा उसे देख रहा था—उस प्रतिक्षण दूर होती हुई राजकुमारीको ।

कुछ दूर जा वह लोग रुकीं । एक सखीने लौटकर सस्मित कहा—"गायक ! मधुपुरका दरबार कलाप्रेमी है ।" और एक मन्द हास्य हँस शीघ्रतासे चली गयी ।

और गायक—

❀ ❀ ❀

सहसा वह चुप हो गये । वह भाव-विह्वल-से हो गये थे । कुछ

क्षण बाद मैंने निस्तब्धता भंग करते हुए पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

वह चौंककर कुछ देर मेरी ओर देखते रहे। फिर एक फीकी मुस्कानके साथ बोले—"फिर क्या हुआ, वह बड़ी लम्बी तथा करुण कहानी है। वह थी एक विशाल राज्यकी राजकुमारी और वह, एक साधारण मनुष्य।

मनुष्य ! वह एक पूर्ण एवं सच्चा कलाकार था, परन्तु राजकुमार तो नहीं था।

और लेटकर उन्होंने नेत्र बंद कर लिये। मैं सोचने लगा,—तो उनका मिलन नहीं हुआ। वह थी राजकुमारी और वह, एक गायक। और मैं अपने भावानुसार कहानी पूर्ण करने लगा। इतनी सामान्य बातके कारण उनका मिलन नहीं हुआ। उनकी मर्म-वेदना, उनकी मनोव्यथा, उनके विरहाकुल प्राणोंकी दशा आदि अनेक विचार उठ रहे थे।

एकाएक विचार उठा, यदि वह कोई छद्मवेषी राजकुमार होता तो—तो अवश्य उनका प्रेम सफल होता, उनका मिलन हो जाता। कुमारीके पिता अवश्य कुमारीका विवाह उस छद्मवेषी राजकुमारसे कर देते। ओह ! मनुष्य कितना क्षुद्र है। प्रेममें गायक व राजकुमार—

हठात् मौन भंग करते हुए उन्होंने कहा—"कहते हैं, अब भी कृष्ण-द्वितीयाकी नीरव रजनीमें, जब हल्की-हल्की चाँदनी निखर आती है, उस सरिताके कूलपर कोई गा उठता है—

युग-युगकी आस...... ।

अभिनेत्री

श्री "आरसी प्रसाद सिंह

विजनकुमार लौटा तो, रातके आठ बज चुके थे। मृदुलाने हँसकर पूछा—"कहो, क्या खबर है ?"

विजनने बेतरतीब ढङ्गसे कोट खोला और वहींसे कोंचपर फेंक दिया। कहा—"हाँ, ठीक हो गया।"

मृदुला जरा नजदीक आ गयी। उत्सुकतापूर्वक बोली—"अरे! वही तो पूछती हूँ कि आखिर क्या ठीक हुआ ?"

विजन गौरसे अपनी पत्नीका मुँह देखने लगा, जैसे, कोई सौदा ठीक कर रहा हो! मृदुला मुस्करायी। विजनने कहा—"जरा पोजमें तो खड़ी हो जाओ!"

"पागल तो नहीं हो गये हो ?"

"मैं देखना चाहता हूँ कि तुममें ऐक्ट्रेस बननेकी सहूलियत है या नहीं!"

"ऐक्ट्रेस ?..." मृदुला अचरजसे लाल हो गयी—"तुम्हारा दिमाग इस वक्त ठीक नहीं है। जरा चाय पी लो!"

"रहने दो। खानेका वक्त हो गया है !" विजन गम्भीर होकर बोला—"पहले सुन तो लो..."

"बताते तो कुछ नहीं !" मृदुलाने तिनककर कहा—"और, सुन लो...क्या सुनूँ ?"

"भारत फिल्म कम्पनी है न ?"

"हाँ।"

"उसके डाइरेक्टर मि० बोससे मैं मिला था।"

"क्या कहा उन्होंने ?"

"बोले कि आप विवाहित हैं या अविवाहित ?"

"तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा कि मैं अविवाहित हूँ।"

"क्या सच ?"—मृदुला खिलखिला पड़ी।

"मैंने यह खयाल किया कि शायद ऐक्टर होनेके लिये अविवाहित होना जरूरी हो; मगर,..."

"मगर...?"

मि० बोसने कहा कि आप तुरन्त तशरीफ ले जाइये। मैं बड़े घपलेमें पड़ा। अजीब बात है। फिर मैंने अपनेको सँभाला। कहा, मेरी शादी हो गयी है। मि० बोस बोले, ऐं...? मैंने कहा, मुझसे गलती हो गयी; याद नहीं। फिर मि० बोसने कहा—अच्छी बात है।"

"ऐसा क्यो किया ?"

"बात यह है, जैसा मि० बोसने कहा, कि भारत फिल्म कम्पनीमें एक ऐक्टरकी जरूरत है। लेकिन उस ऐक्टरको अपनी बीबीके साथ रहना होगा। शर्त यह है कि दोनोंको काम मिलेगा। अकेले बिलकुल गुञ्जायश नहीं।"

"तो तुम्हारा क्या इरादा है ?"

"अब भी पूछती हो ?"

"क्या तुम मुझसे ऐक्ट्रेस बननेकी आशा रखते हो ?"

"जरूर।"

"लेकिन..."

"लेकिन क्या ? ऐक्ट्रेस बननेके लिये गुण ही क्या चाहिये ? गाना तुम्हें आता ही है। स्वर भी बुरा नहीं। और, खूबसूरती जितनी है, काफी है। जो कमी रहेगी, वह मेक-अपसे पूरी कर दी जायगी। रहा, नाचना...सो, जरा कोशिश करनेसे वह भी आ ही जायगा ! क्यों ?..." विजनने मृदुलाके कपोलको अँगुलियोंसे अनुरंजित करके कहा।

"क्या भले घरकी लड़कियाँ...?"

"हाँ,...हाँ; मजेमें। वह जमाना गया, जब वेश्याएँ ही रंग-मंचको सुशोभित करती थीं। अब तो यह हाल है कि समाजकी प्रतिष्ठित महिलाएँ भी...कहो, तो दस-बीसके नाम गिना दूँ, एक दोके नहीं !"

"रहने भी दो...मुझसे तो यह काम नही होनेका।"

"लेकिन, मैं तो वादा कर आया हूँ !"

"ऐसे वादे रोज होते हैं !"

"और...यह ढाई हजार रुपयेकी तनख्वाह !"

मृदुला सोचने लगी। विजनने कहा—"सोचती क्या हो ? डाइरेक्टर बोसने कहा कि आपको रखनेमें कोई एतराज नही। लेकिन, अपनी पत्नीको भी फिल्ममें लाना होगा। हमें एक 'पेयर'की जरूरत है। और वह पेयर ऐसा हो कि नायक-नायिका-

का काम खूबीसे निबाह सके; क्योंकि, कहानी ही हमने वह ली है, जिसके लिये भले-घरके लड़के और लड़कियोंकी जरूरत।"

"तुमने पूछा भी कि मुझे कौन-सा काम करना पड़ेगा?"

विजनने उत्साहपूर्वक कहा—"तुम कहो न...मैं कल ही डाइरेक्टरसे पूछ आऊं ..यह कौन मुश्किल है?"

मृदुलाने कहा—"तबतक विचाराधीन रहने दो।"

"अच्छा,..." विजनने कहा।

(२)

दूसरे ही दिन विजनने डाइरेक्टरसे मुलाकात की।

"कहिये मि० विजनकुमार! श्रीमतीजी राजी हुई या नहीं?"

"हाँ-हाँ। उन्हे उज्र ही क्या हो सकता है?"

"तो, उन्हे एक दिन यहाँ स्टूडियोमें ले न आइये!"

"जैसी आपकी इच्छा। कहिये, कब ले आऊं?"

"कल ही ले आइये।"

"कल तो नही, परसों उन्हे जरूर मैं हाजिर कर दूँगा।"

डाइरेक्टर बोसने मुस्कुराकर कहा—"खैर, कोई हर्ज नहीं।"

विजन जब लौटा तो बहुत खुश था। रास्तेमें सबको इस बातकी सूचना देता आया कि अब वह ऐक्टर हो गया; इतना ही नहीं, उसकी पत्नी भी ऐक्ट्रेस हो गयी है! एक तीरमें यह दो शिकार! उसके ऐसा तकदीरका जबर्दस्त भला और कौन है? अब वह ठाटसे रहेगा, मोटरपर सैर करेगा और ज़िन्दगीका लुत्फ उठायेगा। तमाम दुनियांमें उसकी सोहरतका डंका बजेगा और सभी अखबारोंमें उसकी तस्वीरें प्रकाशित होंगी। लोग

उसके भाग्यपर रश्क करेंगे और बड़े-बड़े आदमी उसकी इण्टर-व्यूके लिये लालायित रहेंगे !

आते ही उसने मृदुलासे कहा-"देखोजी ! मैंने मि० बोससे साफ कह दिया है कि हमलोग तैयार हैं । इतने रुपयेको देखो, उस शानको देखो और..."

"तुम्हारी बातें सही हैं। लेकिन, मैं अपनी कमजोरियोंको देखती हूँ, तो हिम्मत नहीं होती !"

"तुम्हारे मनकी दुर्बलता है।"

"जो हो......"

"तुम नायिका बनोगी।"

"और तुम ?"

"मेरा कोई निश्चय नहीं । भई फिल्मोंमें डाइरेक्टरकी इच्छा ही सर्वोपरि है; कह नहीं सकता।"

"कहीं ऐसा न हो कि मुझे पर-पुरुषके साथ......"

"हिश् !" विजन खिलखिलाकर हँस पड़ा—"तुम भी किस सदीकी बातें कर रही हो......?"

इतनेमें आया विजनका दोस्त, रमण। कोट, पैण्ट, टाई—पूरा साहिबी लिबासमें। देखा, बाजार गर्म है। पूछा—"सुना है भाभी, कि तुम......"

"हाँ, रमण !...तुम्हारी भाभी ऐक्ट्रेस हुई हैं !"

"और, भैया ?"

"भैया ऐक्टर !"—विजनने मुस्कराकर कहा।

मृदुला भी मुस्करायी। रमणने कहा—"वाह !...बधाई !"

"मुझे तो बड़ी शरम लगेगी !"—मृदुलाने कहा।

"भई, तुम्हीं पूछो तो, रमण ! इसमें शरमकी कौनसी बात है ?"—विजन बोला।

"ठीक तो कहती हैं, भाभी !"—रमणने कहा।

"तुम भी लगे भाभीकी ही वकालत करने !"—छूटते ही विजन बोला।

"इतने लोगोंके सामने गाना, हँसना, नाचना···" मृदुलाने कहा—"मुझे तो बड़ी शरम लगेगी !"

"आदत है···सब ठीक हो जायगा"—विजन बोला।

"लेकिन, इन्हे अभिनय करने आता भी हो, तब न ?"

"जन्मसे ही कोई अभिनेता नहीं पैदा होता, रमण !···यह एक कला है। कला सीखनेसे आती है। मैंने इसका भी बन्दोबस्त कर दिया है। परसों हमें डाइरेक्टरने बुलाया है। हमारी परीक्षा तो हो ही चुकी है; वह जरा मृदुलाको देखना चाहता है। परसों ही हमारी नियुक्ति हो जायगी। और, तनख्वाहके रुपये मिलते ही, एक-एक विषयकी खास ट्रेनिंग मृदुलाको मिल जायेगी। तुम निश्चिन्त रहो।"

रमणने कहा—"भैया, यह तो समझा। मगर, भाभी जो किसी दूसरे नायकके हाथमें पड़ी और उसके साथ जो अभिनय करना पड़ा !······"

"तुम बेवकूफ हो, रमण।"

"आप इसे बर्दाश्त कर सकेंगे ?"

"यह कौन-सा कठिन काम है ?"

"अपनी आँखोंके सामने आप भाभीको किसी युवकसे प्यार करते, हँसते, बोलते, चूमते,······"

"चुप रहो !" विजनने कहा—"चुप रहो ! यह तुम्हारी शरारत है !"

(३)

मृदुलाने, सुहागरातके बाद पहली बार ही आइनेमें अपनेको इतनी आलोचनात्मक दृष्टिसे देखा था। चेहरा तो बुरा नहीं। यौवन भी,...और गालोंपर ठुड्डीसे ऊपर यह छोटा-सा काला तिल भी,...। तो, कल डाइरेक्टर बोस हमारा इम्तिहान लेगा...। हमें देखेगा।...हम सुन्दर हैं या नहीं ?

क्या देखेगा ?... ...अभिनय...मगर अभिनय तो हमने कभी किया ही नहीं। बचपनमें.....मगर, वह तो खेल था; कोई अभिनय नहीं।

लेकिन अभ्याससे क्या नहीं होता ?

मृदुला आप-ही-आप आइनेमें मुस्करा पड़ी। खुशीसे उसकी आँखें मुँद गयी। लेकिन फिर खोलना चाहा, तो खुलीं नहीं। पीछेसे किसीने चुपकेसे आकर उन्हें हथेलीसे बन्द कर दिया था।

मृदुलाने कहा—"हटो,...मैं समझ गयी। अभीसे क्या अभिनय करने लगे ? यह स्टूडियो नहीं है !..."

"हाँ, स्टूडियो नहीं है। यह है श्रीमान् विजनकुमार और श्रीमती मृदुलादेवीका प्राइवेट लॉज...!"

"कौन, रमण ?"

खिलखिला उठा रमण और हाथ हटा लिये। मृदुलाने घूमकर देखा, तो, वही......!

"क्या हो रहा था, भाभी अभी ?"

"कुछ भी नहीं तो !"

"तुम अब ऐक्ट्रेस होने जा रही हो, भाभी.....कुछ हम-लोगोंका भी ख्याल रहेगा कि नहीं?"

"क्यों?"

"भैया तो फिल्मके पीछे खब्त हैं। तुम साफ-साफ बतलाओ, भाभी, कि क्या तुमने ऐक्ट्रेस बननेका पक्का इरादा कर लिया है?"

"इतना निश्चित है कि एकदफा डाइरेक्टरसे अवश्य ही मिलूँगी। इसके बाद, कह नहीं सकती, क्या करूँगी। घबराओ मत, परसों तुम्हें मालूम ही हो जायगा।"

"डाइरेक्टरसे मिलोगी?"

"क्यों, नुकसान क्या है?"

"भाभी आजकलके डाइरेक्टर बड़े चालाक होते हैं। उनपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता! रमणने लापरवाह-सा कहा।

"खैर, एक अनुभव मेरा यह भी रहे!" मृदुलाके स्वरमें दृढ़ता थी।

(४)

अभी पूरा पाँच भी नहीं बजा था कि विजनने आकर कहा—"तैयार हो जाओ। डाइरेक्टरके यहाँ चलना है।"

मृदुला बोली—"मैं तैयार हूँ।"

"बस, यों हीं तैयार हो?"

"तब और क्या?"

"पाउडर, लिप-स्टिक,......मैं तुम्हें क्या बताऊँ?...... और, देखो...वह नीले रंगकी साड़ी,...वह जम्पर,...और...

"और,...वह केशमें दिलपसन्द जूड़ा..." विजनने देखा तो वह था रमण, हँसनेकी कोशिश करता-सा!

"देखो, रमण!...तुम मौकेपर आ गये। जरा भाभीको बता दो कि उसे क्या पहनना चाहिये। तुम उस्ताद हो; तुम्हीं ठीक-ठीक कह भी सकोगे।"

"और हजरत?"

"भाई!...एक टैक्सीके विना...क्या फिल्म ऐक्ट्रेस पैदल चलेंगी?"

रमणने कहा—"अच्छा जाइये!"

मृदुलाने रमणका हाथ पकड़कर खींच लिया—"इधर आओ!"

रमणने कहा—"भाभी आज तो तुम वाकई बहुत खूबसूरत लगती हो।"

"सचमुच?"—मृदुला बोली और रमणको खींचकर ड्राइंग-रूममें ले गयी।

"तुम जानती हो, भाभी, कि फिल्मके डाइरेक्टर अपनी ऐक्ट्रेसोंके साथ कैसे व्यवहार करते हैं?"

"नहीं।"—मृदुलाने अनजान-सी बनकर कहा।

"वे रातमें शूटिंग खत्म हो जानेके बाद, जिस किसी अभिनेत्रीको, चाहे जिस वेश-भूषामें अपने प्राइवेट रूममें बुला सकते हैं। नामके लिये कम्पनीका कोई प्रोप्राइटर हो, असलमें मालिक वही होते हैं। जिसपर उनकी कृपा हुई, उसका सितारा चमका; जो उनके चंगुलमें नहीं फँसीं, उसे फिर पूछता ही कौन है?"

"यह बात है !" बालिकाके सरल कौतुक और कौतूहलसे मृदुलाने कहा—"तब तो मुझे जरूर जाना चाहिये।"

"क्यों ?"—रमणने मुसकराकर कहा।

मृदुला कोचपर लेट रही। और, एकटक रमणका मुँह निहारने लगी। रमण अधीर हो उठा।

मृदुलाने जान-बूझकर अपना अंचल व्यस्त कर दिया। सिरके बाल खुलकर पीठपर लहराने लगे और अद्‌भुत उल्लासमें भरकर बोली—"रमण, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

रमण चौंक उठा—"भाभी !" बात बिलकुल नयी थी।

"हाँ-हाँ। इधर आओ, कोचपर जरा मेरे पास बैठो।

रमणका कण्ठ कुण्ठित हो गया। स्वर नहीं निकला; चुपचाप बैठ गया।

मृदुला उठी और सूटकेससे बढ़िया रेशमी साड़ी निकाल लायी। रमणको दिखलाकर कहा—"इसे पसन्द तो करो !"

"हाँ, अच्छी तो है !"

"मुझे पहना तो दो..."

मृदुलाको रमण साड़ी पहना दे ?......छिः—छिः ! रमण कहाँ चला आया है।

उसने प्रश्न-भरी दृष्टिसे भाभीकी ओर देखा।

"अच्छा, तुम ठहरो ! मैं खुद पहन लेती हूँ।"

साड़ी पहनकर उसने जम्पर बदला, बालोंको सँभाला, पाउडर लगाया,...और...सब कुछ अजीब लापरवाहीसे कुछ अजीब चुलबुलाहटसे...कभी हँसती, कभी सिर्फ मुस्करा ही देती; और

कभी खिलखिलाकर मचल जाती! कभी तिरछी नजरोंसे देखती, कभी चुप हो जाती, और कभी गुनगुनाने लगती!

तरुण रमण भाभीको देखता और मन-ही-मन आकुल उत्कण्ठासे भर जाता—"आज भाभीको क्या हो गया है!"

लेकिन, तब भाभी झूम-झूमकर गा रही थी-"आज माधवी राते, नील-यमु-नाय..."

मृदुलाने नाचकर कहा—"मुझे पहचानते हो?"

रमणको याद आया, एक रात थी—चाँदनी रात थी; नदीका तट था। लहरोंमें नाव बह रही थी। उस नावपर दो प्रेमी और प्रेमिका थे। दोनों प्रेम-रसमें नखसे शिखतक शराबोर! नाव लहरोंसे खेल रही थी, और प्रेमिकाने प्रेमीके गलेमें हाथ डालकर कहा था—"मुझे पहचानते हो?"

प्रेमीने उसका आलिंगनकर, उत्तर दिया था"—हाँ।"

अकस्मात्, रमणको मालूम पड़ा, जैसे किसी रमणीकी आकुल बाहे उसके कण्ठकी ओर बढ़ रही है-"मुझे पहचानते हो?"

रमण सुखके आवेशमें बेसुध हो गया। विह्वल होकर उसने कहा—"हाँ।"

"मैं कुसुम-कली हूँ।"

"और, मैं मधुका लोभी भौंरा हूँ।"

"मैं समुद्रकी लहरें हूँ।"

"और, मैं आसमानका चाँद हूँ।"

रमणीके श्वास रमणके अधरोंके बिलकुल नजदीक खिंचसे आये और...इतनेमें बाहर पोर्टिकोमें ड्राइवरने मोटरका हार्न बजाया—"बाबू, चलिये न!"

मृदुला जैसे चौंक पड़ी—"वह आ गये !"

रमणने कहा—"हाँ, चलो ।"

और, विजन बदहवास-सा आकर कुर्सीपर गिर पड़ा ।

मृदुला सज-धजकर ड्राइङ्ग-रूमसे बाहर निकली । रमणने उल्लसित होकर कहा—"भाभी, आज तो तुम्हारा रूप, चाँद-सा निखर उठा है । भारत-फिल्म कम्पनीका स्टूडियो उज्वल हो जायगा !"

मृदुलाने गर्वसे अपनी ओर एक बार देखा, मानो आज वह विश्व-विजयकी कामनासे निकली हो !...कस्तूरीकी गन्ध-सा सौंदर्य, यौवन उच्छृङ्खल,...कामुकतासे परिपूर्ण !

विजन कुर्सीपर सिर झुकाये बैठा था ।

"अरे, सो गये क्या...चलो न देर हो रही है—" मृदुलाने कहा ।

"अब हम नहीं चलेंगे ।"—बोला विजन ।

"क्यों ?" मृदुला आश्चर्यसे आवाक् थी !

"कम्पनी फेल हो गयी; उसका दिवाला निकल गया ।"

"मजाक क्यों करते हो; चलो ।"

"मजाक नहीं करता, मृदुला ! मैंने अपनी आँखोंसे देखा है ।"

"क्या देखा है ?"

"देखा कि इतना सुन्दर तुम अभिनय करती हो···"

"कि, कम्पनी भी फेल हो गयी । क्यों, भाई साहब !"—रमण, जो अबतक चुप था, बोला ।

"लेकिन, मैं तो ऐक्टिंग सीख रही थी ।"

शायद विजनने सुना नहीं; क्योंकि तबतक वह उन दोनोंको छोड़कर, बगीचेके फुटपाथ पर टहलने लगा था; वजह यह कि वह बेचैन था!

काली

कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद'

वह काली थी, कुरूपा थी, और थी विकराल। उसका मुख चाँद-सा न था, और न उसकी दन्त-पंक्तियाँ ही अनारदाने-सी थीं। उसके गाल गुलाबसे न थे, उसकी भौंहें कमान-सी न थीं। वह स्थूल थी, भयंकर थी।

लोग उसे देखकर चीख मार देते थे। माताएँ अपने बच्चोंको अंचलमें छिपा लेती थीं। छैल-छबीलोंकी हवास गुम हो जाती थी। उसके नामहीसे लोग सिहरने लगते थे। बड़े-बड़े पत्थर हृदयवालोंके भी दिल दहल जाते थे। जब वह मुस्कुराकर किसी-की ओर इशारा करती थी, तब दुनियाँ काँप उठती थी। वह इतनी भयंकर थी कि उसके सामने आँधी तुच्छ जान पड़ती थी और वह इतनी काली थी कि अमावस्याकी रात उससे भिन्न प्रतीत नहीं होती थी।

और वह युवक! लोग उसे बिलकुल पागल कहते थे, बिल-कुल पागल! क्योंकि वह उसी कालीका पुजारी था। उसने घर

छोड़ दिया, माँ और बहनोंका प्यार छोड़ दिया। केवल उसकी ताकमे घूमा करता था। उसीका चित्र! उसके लिए उसके समान कोई सुन्दरी ही न थी।

वह खुद भी सुन्दर था। वह बड़े लाड़ प्यारसे पाला गया था। धनी माँ-बापका एकलौता था। उसे अनेक प्रलोभन दिये जाते थे। दुनियांके बड़े-से-बड़े ऐसो-इशरत उसके सामने थे। नवकलियोकी माला उसे पहनायी जाती थी पर वह किसीकी कुछ परवाह न करता; किसीकी कुछ नही मानता; वह हमेशा अपनी धुनमें मस्त रहता था। उसके लिये संसार कुछ न था, नवकलियाँ कुछ न थी; अगर थी तो वही काली। वही उसकी आशा थी, वही उसकी जान थी।

अपनी प्रेमिकाकी भयंकरता उसमे आने लगी। पुलिसके लाल पगड़ीधारी सिपाहियोंने उसे कालकोठरीमे बन्द कर दिया।

× × ×

एक दिन जेलरने धीरेसे आ सुनाया—"अपील नामंजूर हुई, ओह! वह विहँसने लगा। आनन्दसे उसका चेहरा खिल उठा। मानों उसे स्वर्गका राज्य मिल गया हो। वह जेलरका हाथ पकड़ कर कहने लगा:—

भाई! मै क्या दूं? इस सम्वादके लिये क्या दूँ? तुमने मुझे मेरी प्रेमिकासे मिला दिया। यदि आज मैं हिन्दुस्तानका राजा होता तो मैं तुम्हे बहुत कुछ दान दे देता। लोग अपील कर मुझे अपनी प्रेयसीसे दूर रखना चाहते थे। आह, आह, आज कैसा सुन्दर समय है। अपनी कालीकी गोदमे अब मै मुँह छिपाऊँगा, वह मुझे प्यार करेगी। लोग उससे डरते हैं, लेकिन उसके

हँसनेमें जो प्रकाश है, उसकी आँखोंमें जो ज्योति है, उसके मुखमें जो प्रकाश है, उसके आलिंगनमें जो सुखद ताप है वे अब मेरे हैं, मेरे, मैं उसका हूँ। वह मेरी है। जेलर, जेलर, कब मिलाओगे ?

साढ़े छः बजे प्रातः।

"बहुत सुन्दर, बहुत सुन्दर" वह कहने लगा, लोग अपनी प्रेयसीसे आधी रातमें मिलते थे, इसे तो साफ़ मालूम पड़ता है कि वे बुरा करते हैं नहीं तो अंधकारमें मिलनेकी क्या जरूरत थी। मैं अपनी प्रेयसीसे प्रातःकाल मिलूँगा। अन्धकारके दूर होने-पर प्रकाशके प्रारम्भमें, अहा, हमलोगोंका मिलन घोर अन्ध-कारका घातक होगा। मुझे बधाई दो, जेलर साहब, लाओ, इस कार्य्यके लिये प्रेमसे तुम्हारी अँगुलियाँ चूम लूँ।

❀ ❀ ❀

उषा छिटक रही थी। छः बजके पचीस मिनट हो चुके थे। मनुष्योंका अगाध समुद्र उमड़ आया था। पुरुष दिल थामे खड़े थे, स्त्रियाँ सिसक-सिसककर रो रही थीं। वह आया हँसता हुआ। जल्लाद पुरोहितकी भांति सम्मिलनके लिये फाँसीकी "काली" डोरीको ठीक करने लगा।

युवकने लपककर रस्सीको ओठोंसे लगा लिया, मानो एक भूखा बच्चा माँकी छातीमें सटा हो, वही उसकी काली थी। लोग सिहर उठे, पर उस स्थलका समस्त वातावरण सम्पूर्ण प्रान्त उसके त्यागपूर्ण बलिदानसे उद्‌भासित हो उठा।

एक लड़का एक लड़की

श्री धर्मवीर एम० ए०

एक तुर्क था और एक अरब। एक लड़का था दूसरी लड़की। परन्तु मैं समझती हूँ कि उनकी आत्मायें एक-जैसी थी और मुझसे उनसे प्रेम था। उनके लिये मैं अपने अन्दर एक स्वाभाविक लगाव और करुणाजनक आदर-भाव अनुभव करती हूँ।

इनमे एकके साथ मिलनेका सुयोग मुझे महायुद्धके आरम्भमें हुआ। सर्दीका मौसम था। साढ़े चार बजेसे ही अन्धेरा छाना शुरू हो गया। तुर्कीके पास मैं ट्रामसे उतरी। मेरे साथ फलोंके कुछ डिब्बे थे और मैं हैरान थी कि इनको उठवाकर घरतक ले जानेका क्या इन्तजाम करूँ कि इतनेमें ट्रामसे उतरनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी भीड़में मुझे दो छोटे-छोटे नंगे पाँव नजर आये जो किसी बालककी हथेलियोंके बराबर थे। एक बारीक-सी आवाज निकली "तरजुमान"। कोई अखबार-फरोश लड़का अखबार बेच रहा था। एकाएक गुजरती हुई ट्रामके प्रकाश और मार्गके अँधेरेके दर्मियान मेरी दृष्टि आवाज लगानेवालेपर पड़ी। यह एक छोटा-

सा लड़का था जिसके गोल-से पीले चेहरेपर चुप हो जानेके बाद भी आवाज लगानेका असर बाकी रहता था। जब मैंने उसको कन्धेसे पकड़कर ठहरा लिया तब उसकी निर्बलता और सुकुमारताने मेरे हृदयमें एक असाधारण समवेदना उत्पन्न कर दी।

"अरे बालक, क्या तुम मेरी ये चीजें उठाकर ले चलोगे ?"

"लेकिन मैं तो अपने अखबार बेच रहा हूँ जी।"

मैंने उसे बताया कि मेरा काम करनेमें उसे अखबार बेचनेसे ज्यादा फायदा होगा। इसपर उसने अपने अखबार बगलमें दाब लिये और सभी डिब्बोंको अपने छोटे-छोटे कमजोर हाथोंमें जमा करनेका प्रयत्न किया। फलोंके बड़े-बड़े डिब्बे और उसके नन्हें-नन्हें हाथ देखकर मुझसे रहा न गया और कुछ डिब्बे मैंने भी भी उठा लिये। वह आगे-आगे चलने लगा और मैं उसके पीछे-पीछे। टाउन-हालके प्रकाशमय भवनसे गुजरकर जब हम एक अँधेरी गलीमें आ गये जिसकी तरफ हवाका रुख था, तब मैंने अनुभव किया कि लड़केको साथ लाकर मैंने भारी भूल की है और असबाबको खुद उठाकर अकेले चले आना मेरे लिये इससे कहीं आसान था। इसके साथ ही, चलते-चलते, उसके नंगे सिरका मेरे साथ छू जाना और उसकी वह तेज रफ्तार जिसमें उसके नन्हें-नन्हें पाँव ठंढे पत्थरोंपरसे उचटते चले जाते थे, मेरे हृदयमें मातृत्वका भाव जागृत कर रहे थे। इस भावमें शोक और हर्ष दोनों मिले हुए थे। मैंने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"रुस्तम।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"शाहजादा बाग़में।"

"तुम्हारी माँ है ?"

"हाँ-है ।"

"भाई, बहनें ?"

जरा सोचनेके बाद वह ऊँची आवाजमें गिनने लगा—"एक, दो, तीन ।"

"कोई बड़ा भाई ?"

उसने अपना सिर हिलाकर कहा—"नहीं, सब छोटी हैं । मैं सबसे बड़ा हूँ । वे सब लड़कियाँ हैं । एक तो अभी दूध पीती है ।"

"और तुम्हारे पिता ?"

"पिछले साल वह लड़ाईमें गये, परन्तु उसके बाद उनकी कोई खबर नहीं आयी ।"

"क्या तुम्हारी माँ कुछ काम करती है ?"

"अजी, वह काम कैसे कर सकती हैं ? वह तो बीमार हैं ।

"उसकी सेवा कौन करता है ? मेरा कहना है कि तुम-सबकी देख-भाल कौन करता है ?"

उसके पाँव गुस्सेके साथ ठंढे पत्थरोंपर पड़े और वह चकित एवं भग्न-हृदय-सा खड़ा हो गया । उत्तरी वायुकी सायँ-सायँका मुकाबला करते हुए उसने अपनी नन्हीं-सी भरायी हुई आवाजको पूरे जोरसे बुलन्द किया और आश्चर्यकारी बल एवं अभिमानके साथ बोला—"क्या मैं अपनी माँकी देख-भाल नहीं कर सकता ?"

उसकी इस बातने मेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और यद्यपि मेरी आँखे आँसुओंसे तर थीं, तो भी मैंने हर्ष सूचित

करते हुए कहा—"अच्छा, मुझे बताओ तो, तुम किस प्रकार माँकी देख-भाल करते हो ?"

इसके उत्तरमें उसने मुझे बताया कि वह अखबार बेचा करता है। प्रातःकाल "तसवीर" नामका पत्र बेचता है, जिसकी बिक्रीसे उसके लिये पाँच प्यास्तर‡ बच जाते हैं। जब उसने अपने नफेका जिक्र किया तब तो मेरे मुखकी ओर देखने लगा कि मुझपर उसकी इस असाधारण कारगुजारीकी बात सुनकर क्या प्रभाव पड़ा है। तीसरे पहर वह मजदूरी करता था और इस तरह कोई सात प्यास्तर कमा लेता था और फिर शामको वह "तरजुमान" बेचा करता था। उसकी दैनिक आय पन्द्रहसे बीस प्यास्तरतक थी। क्योंकि उन दिनों एक रोटीकी कीमत तीन प्यास्तरसे ज्यादा न थी। इसलिये यह अच्छी खासी सन्तोषजनक मालूम होती थी। परन्तु जब वह मुझे यह बातें सुना रहा था तब उसका नन्हा-सा सिर अपने आपको मेरे सिरसे भी ऊँचा कर रहा था।

एक ओर उसके नन्हें-नन्हें पैरोंका और दूसरी ओर ठण्ढे पत्थरोंका ख्याल मुझे रह-रहकर आता था। मैंने एकाएक पूछा, "रुस्तम, तुम्हारे पास जूता नहीं है ?"

वह हँस दिया। वृद्ध लोगोंके समान वह जीवनपर हँसना सीख चुका था।

अरे, क्या जीवित रहनेके लिए ऐसी चीजोंकी भी आवश्यकता है ?

उसने कहा—"हमारे हमसायेने मुझे एक जूता दिया था।

---

‡ एक प्यास्तर = एक पैसा।

परन्तु मैं उसे पहनकर दौड़ नहीं सकता। इसके अलावा हर वक्त पहननेसे वह टूट जायगा, यह भी डर है। इसलिए मैंने उसे अपनी पेटीमें लगा रक्खा है।"

मैंने सोचा कि देखूँ तो सही किस जूतेके टूट जानेका उसे इतना ख्याल है। अतएव मैंने झुककर उसकी पेटीपर नजर डाली। लकड़ीकी दो बड़ी-बड़ी खड़ाऊँ उसकी पेटीमें इस तरह लटक रही थी जैसे दो रिवाल्वर लगे हों। मेरी तरफ देखकर वह हँस पड़ा। उसकी हँसीमे कुछ ऐसी बात थी जिससे उसके मुखपर अनुभूति और परिपक्वताकी झलक प्रकट होने लगी। इससे उसका चेहरा सुन्दर प्रतीत होने लगा।

इतनेमें हम घर पहुँच गये। मैंने उससे अन्दर आनेको कहा और बताया कि मेरे भी उसके जैसे बच्चे हैं। एक क्षणतक वह सोचता रहा। फिर एक निर्णायक ढङ्गसे उसने अन्दर आनेसे इनकार कर दिया। वह लोगोंके यहाँ नही आया करता था। इसके अतिरिक्त आज रात उसे और भी काम था। उसने कहा कि मैं फिर आऊँगा। वह अपनी प्रतिज्ञाका पक्का मालूम पड़ता था; क्योंकि मैंने देखा कि जानेके पहले उसकी काली आँखें मेरे घरके दरवाजेको पहचाननेका प्रयत्न कर रही हैं। वह जाने लगा तब मैंने उसके सिरपर स्नेहपूर्वक हाथ फेरा। कृतज्ञता-प्रदर्शनार्थ इसका उत्तर उसने अपनी आँखोंद्वारा दिया।

ज्यों-ज्यों मेरे और उसके बीच फासला बढ़ता गया "तरजुमान" की नन्ही और तेज आवाज धीमी पड़ती गयी।

बहुत दिनोतक मैंने रुस्तमकी प्रतीक्षा की, पर कई दिन निकल जानेपर भी वह न आया। ज्यों-ज्यो रोटीकी कीमत

बढ़ती गयी त्यों-त्यों रुस्तमका ख्याल मेरे दिलमें टीस मारने लगा।

(२)

शाम-प्रदेशमें निर्धनता और दुर्भिक्षके दृश्योंने रुस्तमसे हुई भेंटको एक बार फिर मेरे मनमें ताजा कर दिया—उन भयानक दिनोंमें उसकी आयु मुश्किलसे नौ सालकी होगी और वह चार प्राणियोंको पाल रहा था। मैंने सोचा, पता नहीं अब उसकी वह सुन्दर आँखोंवाला वीरोंका-सा मुख निर्धनोंके कब्रिस्तानमें किसी गुमनाम कब्रमेंसे आकाशकी ओर देखते हुए हृदय-विदारक प्रश्न कर रहा है। परन्तु क्या उसके नन्हे-से निर्बल शरीरमें छिपा उसका बलवान हृदय उस समयतक मृत्युको प्राप्त हो सकता है जबतक उसकी माता और उसकी छोटी बहनें अनाहारके कष्ट भोग रही हैं?

अपने छोटे मित्रोंमें सबसे अधिक प्रिय मुझे रुस्तम था; परन्तु 'शाम' मे एक छोटी-सी अरब लड़की आयी। मेरे हृदयमें रुस्तमके साथ ही वह भी बैठ गयी।

महायुद्धके अन्तिम वर्षमें एक बार मैं पहाड़ी प्रदेशके दौरेसे वापस आ रही थी। बीमारी और दुर्भिक्ष उत्तरोत्तर वृद्धिपर थे और लोगोंके दल-के-दल देशको छोड़ रहे थे। भूखे बच्चे, जिनके चेहरोंकी हड्डियाँ निकल आयी थीं और रङ्ग पीला होकर हरा-सा हो गया था, जिनकी आँखें अपनी कोटरोंके अन्दर धँस गयी थीं और जिनके मुख भूखके मारे खुल गये थे, सैकड़ोंकी तादादमें अवारा फिर रहे थे और "हम भूखे हैं!" चिल्ला रहे थे। उनकी आवाज इतनी हृदय-विदारक थी कि मुझे मनुष्यकी बेकसी-

पर लज्जा आने लगी। पहाड़ोंकी शुद्ध हवामें नीबू और सन्तरेके फूलोंकी सुगन्धि फैली हुई थी। यह हवा दिमागमे नशा-सा ला रही थी। आकाश, वायु, वृक्ष—सबने मुझपर अपने रङ्ग और खुशबूका जादू किया। पर बच्चोंकी मुसीबत देखकर हृदय फटा जाता था—वे बच्चे जिनकी पीठें खम खाये हुई थी, जिनके बाल बिखरे हुए थे, जिनके चेहरे कुरूप और आँखें निस्तेज हो गयी थी—वे बच्चे जो मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि प्रकृतिका सौन्दर्य हमपर मखौल उड़ा रहा था।

मैं 'बेरोत' मे आयी तो मेरे दिलपर एक बोझ-सा था। युद्धने हमारे हृदयोंमें कष्टकी अनुभव-शक्ति उत्पन्न कर दी थी और मैं भूल गयी थी कि इस संसारमे मेरा कोई पृथक् अस्तित्व भी है। मैं कष्ट-पीड़ितोंमें मिल गयी थी और अपने आपको उन्हींमे गिनने लगी थी।

बाजारमे गाड़ी एका-एक रुक गयी। मैंने ख्याल किया कि शायद घोड़े भूखे हैं, इस कारण एकदम ठहर गये हैं। परन्तु जब मैंने देखा कि कोचवान पूरे जोरसे लगाम खीच रहा है तब जल्दीसे बाहर निकल आयी। एक स्त्री गाड़ीके सामने पड़ी थी। सबसे पहले मेरी दृष्टि उसके सूजे हुए लाल-पीले पाँवपर पड़ी। फिर मैंने उसका उतरा हुआ चेहरा देखा, जिसपर उसने एक लाल रङ्गका रूमाल बाँध रक्खा था। उसकी आँखें बुरी तरहसे बन्द हो रही थी। उसकी टाँगोपर तीन छोटे-छोटे बच्चे नवजात बिलौटोके समान सरसरा रहे थे। एक उनमेंसे एक वर्षका था। दूसरेकी आयु तीन वर्षसे ज्यादा न होगी। उनके मुँह बन्दरोंके बच्चोंके समान थे और वे अपनी चौंधियाई हुई बीमार आँखोसे

लोगोंकी तरफ घूर-घूरकर देखने लगते थे। करीब पाँच बरसकी एक लड़की, जिसके सिरपर लाल-सा कपड़ा बँधा हुआ था और जिसका शरीर एक फटे हुए नीले लहँगेसे ढका हुआ था, उस स्त्रीपर झुकी हुई थी और उसके हाथ मल रही थी।

बाजारके दोनों तरफ छोटे-मोटे दूकानदार शान्त बैठे इस दृश्यको देख रहे थे। भूखे बच्चोंकी आवाजें अभीतक मेरे कानोंमें गूँज रही थी। मैं जल्दी-जल्दी बाजारमें किसी रोटीवालेकी दूकान ढूंढ़ने लगी। मैंने ख्याल किया कि निश्चय ही यह औरत भूखसे मर रही है, क्योंकि शहरमें इस प्रकारकी घटनायें आम थीं। वापस आकर मैंने रोटियाँ उस छोटी लड़कीके हाथमें दे दीं। परन्तु मैंने देखा कि गिरी हुई औरतका चेहरा न खानेके कारण उतना पीला नहीं मालूम होता। लड़कीने, जिसके लाल रूमालकी ओटमें दो मोटी-मोटी काली आँखें थीं और जिसका पीला मुख एक बुढ़ियाकी तरह मालूम हो रहा था, पहले मेरी ओर देखा और फिर रोटियोंकी तरफ। तत्पश्चात् उसने एक अमानुषिक स्वरमें कुछ कहा।

जिस भाषामें वह बोल रही थी मैं उससे अपरिचित थी। बातचीत करते हुए भी वह अपनी माताकी कनपटियों और कलाइयोंको बड़ी गम्भीरतासे मलती रही। अन्तमे पीछेसे एक मनुष्यने फ्रांसीसी भाषामें कहा—"श्रीमतीजी, आप घबरायें नहीं, इस स्त्रीको ऐसे ही बीमारीका दौरा हो जाया करता है।"

मैंने मुड़कर देखा तो एक मोटा-सा दूकानदार मेरे पास खड़ा था। उसने रोटियाँ अपने हाथमें ले ली और कहने लगा—इस औरतको मिर्गीका रोग है। यह अक्सर इसी तरह जमीनपर

गिर पड़ती है, जैसे मर गयी हो, और अगर इसकी लड़की न होती, तो वास्तवमें यह कभीकी मर गयी होती। यह लड़की ही इन सबकी सेवा करती है। रोटी मुझे दे दीजिये। जब इसकी माता होशमे आ जायगी तव लड़की उसे रोटी खिला देगी। (एक लड़केकी ओर मुँह करके) अहमद, थोड़ा-सा पानी लाना।

लड़कीने मेरी तरफ देखा और सिरके इशारेसे मानो दूकानदारकी बातका समर्थन किया। उसकी काली आँखें मेरी आँखोसे मिली। उनकी नरमी और मिठासने मेरे दिलको पिघला दिया। इस मैले और बीमारीसे भरे हुए हाथोंवाली रुग्ण लड़कीकी आत्मा एकाएक अपने सारे गुप्त सौन्दर्यके साथ मेरी आँखोंके सामने प्रकट हो गयी।

× × ×

इस रात एक खानकाहके खुले बालाखानेपर बैठकर मैं खजूरोंकी हरी-हरी छत्रियोंके ऊपर पहाड़की सफेद चोटियोंकी तरफ देख रही थी। एक ओर समुद्र और आकाशकी नीलिमा क्षितिजके एकान्तसे निर्जनतामें धीरे-धीरे आकर मिल गयी।

शाम प्रदेशका तारकालोकित आकाश, ठण्ढक और प्रकाशसे विह्वल वायु, हमारे सिरोंपर झुकी पड़ती थी। दो कुमारियाँ लम्बे-लम्बे काले कपड़े और सफेद-सफेद टोपियाँ पहने हुए बरामदेमेंसे गुज़र गयी। मैं शोकके अन्धकारमें मग्न चुपचाप वहीं बैठी रही।

बागमें हमश्ककी एक ललना कुछ विचित्र-सी आवाजमें गा रही थी—"हे चन्द्र, हे चन्द्र......" उसकी लम्बी तानें अनन्तके छोरको छूती मालूम होती थीं। दूसरी ओर सन्तरेके

वृक्षोंके झुण्डमेंसे गुजरनेवाली हवा मनुष्यके हृदयको पार करके बह रही थी। मुझपर भी इनका प्रभाव हुआ। कष्ट और दुर्भाग्यके इस उपाय-रहित रोगका मुझपर कोई प्रभाव न रहा। मैंने कहा—"इस रोगका इलाज मृत्यु ही करेगी। इस नये विचारके साथ ही मेरे सीनेमें पड़ी एक पक्की गिरह आपसे आप खुल गयी। मै सन्तुष्ट हो गयी। मेरे मुँहसे ये शब्द निकले—एक समय आयगा कि इस आकाशकी दूसरी ओर रुस्तम और वह छोटी लड़की हाथमें हाथ दिये प्रसन्न-चित्त टहला करेंगे। तब उनकी माता और बहने उनकी मददकी मोहताज न होंगी।" ❀

❀ तुर्की कहानी।
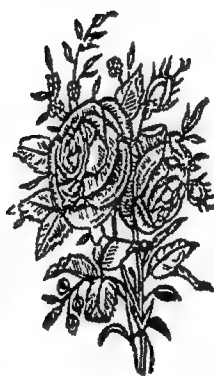
कन्याका जन्म

श्री मदारीलालजी गुप्त

पढ़ते-पढ़ते आँख झपकने लगी तो गोकुलप्रसादने पुस्तक अलग रख दी। स्त्रीसे बोले—सो गयी क्या ?

गनेशीने उत्तरमें कहा—हाँ, अब नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—जरा पाँव दाब दो।

गनेशी—नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—अरे जरा दाब दो। तुम तो......

गनेशी—कल दाब देंगे।

गोकुलप्रसाद—कल क्या......

आधी राततक तो तुम किताब देखते रहते हो, बुलानेसे बोलते नहीं। अब कहते हो, पाँव दाब दो।

उसके बाद दोनों सो गये।

गोकुलप्रसादने देखा कि एक अच्छा बढ़िया सजा हुआ कमरा है। टेबुल है, कुर्सी है, पलँग है, मसहरी है, पंखे हैं, तस्वीरें

हैं, बहुत-सी चीजें हैं। रेशमकी डोरीसे लटकता हुआ एक सुन्दर पालना भी है। उसमें मखमली गद्दी बिछी है। और—और उसपर एक सुन्दर बच्चा लेटा हुआ है। हाथ-पैर पटककर खेल रहा है। गुलाबके समान मुख और पानीसे भरी ताजी चमकदार आँखें देखकर गोकुलप्रसादका मन आनन्दसे भर गया। फिर आँख खुल गयी। सबेरा हो चुका था। सफेदी अच्छी तरह फैल चुकी थी।

उन्होंने स्त्रीको धीरेसे जगाया—सुनती हो! ए।

गनेशी आँख खोलते ही उठ बैठी—सबेरा हो गया!

गोकुलप्रसादने उसे फिर लिटाकर कहा—आज एक बड़ा अच्छा सपना देखा है।

गनेशी—कैसा सपना?

गोकुलप्रसाद—बड़ा अच्छा।

गनेशी—कहो भी।

गोकुलप्रसाद—देखा है कि राजोंके ऐसा ठाट-बाटका महल है। उस महलके एक शानदार कमरेमें एक सुन्दर बच्चा पालनेमें पड़ा झूल रहा है—ऐसा सुन्दर कि क्या बतावें? और वह बच्चा हमारा ही है। सबेरेका सपना सच होता है न?

गनेशी—क्या जानें; कहते तो हैं।

गोकुलप्रसाद भविष्यकी आनन्दमयी कल्पनासे पुलकित होकर बोले—अगर कहीं यह सच हो जाय?

गनेशी मुस्कराकर बोली—हो जायगा।

गोकुलप्रसाद इतनी जल्दी अपनी मनोकामनाकी सिद्धि देखकर जैसे चकित होकर बोले—सच?

गनेशी—सच तीन महीनेका है।

वह दिन बड़ी हँसी-खुशीमे बीता।

रातको गोकुलप्रसादने एकाएक पूछा—क्यों जी, तुमने और पहले क्यों नहीं बताया?

गनेशी—अब तो बता दिया।

गोकुलप्रसाद—बस, मैं ईश्वरसे सिर्फ एक लड़का चाहता हूँ। और वह लड़का ऐसा हो कि दुनियांमें अपना नाम कर दे।

२

कुछ दिन बाद दोपहरको गोकुलप्रसाद जब घर आये तो मालूम हुआ कि ससुर आये हैं।

गनेशीने कहा—छुट्टनका विवाह लग रहा है। ठीक हो गया तो वैसाखमें हो जायगा। दद्दा हमको लेने आये हैं। क्या कहते हो?

गोकुलप्रसाद—विवाह लग रहा है? लग जाने दो, चली जाना।

गनेशी—अभी न जायँ?

गोकुलप्रसाद—अभी जाकर क्या करोगी?

गनेशी—दद्दा लेने आये हैं।

गोकुलप्रसाद—फिर आ जायँगे।

गनेशी—अच्छा, फिर आ जायँगे? उतनी दूरसे आये हैं, खाली लौट जायँ? फिर आवें, तुम फिर लौटा दो। हम तो जायँगे।

गोकुलप्रसाद—अभी तो जाना नहीं हो सकता। उनको

पहलेसे चिट्ठी भेज देनी थी। हम कह देते, ले जाओ, तब आते। ऐसे ही क्यों चले आये ?

गनेशी—तुम भी तो ऐसे ही जाकर कईबार ले आये हो।

गोकुलप्रसाद—कहाँ, कई वार ? एक वार शायद गये थे।

गनेशी—अच्छा, एक ही वार सही। तो एक वार वह भी आये हैं।

गोकुलप्रसादने प्रेमसे स्त्रीका मुँह चूमकर कहा—नहीं, मेरी रानी, अभी मत जाओ। देखो, तुम चली जाओगी तो हम यहाँ अकेले कैसे रहेंगे ?

गनेशी—तुम तो बड़ी मुश्किल करते हो।

गोकुलप्रसाद—मुश्किल तुम्हीं करती हो। हमें अकेले छोड़कर जाने कहती हो। तुम्हीं बताओ, हम अकेले यहाँ रह सकेंगे ?

गनेशी—तो तुम भी चले चलो।

गोकुलप्रसाद—न जाओ। देखो, उनसे अच्छी तरह समझा-कर कह देना, जिसमें बुरा न लगने पावे।

गनेशी नहीं गयी उसके पिता लौट गये।

३

गनेशीने बड़ी उमङ्गसे तरह-तरहके पकवान बनाये। फिर पतिके आनेकी राह देखने लगी। अभीतक तो कबके आ जाते थे, आज नहीं आये। क्या बात है ?

शाम हो गयी। घरमें अँधेरा हो चला। गनेशी लैम्प जलाने उठी। दियासलाई न जाने कहाँ गुम हो गयी थी, मिली नहीं।

अभी तो चूल्हा जलाया था। कहाँ रख दी? आखिर उसने आलमारी खोलकर दर्जनमेंसे दूसरी डिबिया निकाली और काम चलाया। इसी बीच रसोई-घरमें कहींसे एक कुत्ता घुस गया। उसने खोज-खोजकर मनमाना भोजन किया। बर्तनोंकी भड़भड़ाहटसे गनेशी दौड़ी। पर उस समयतक सब साफ़ हो चुका था। कुत्ता जीभसे मुँह पोंछता हुआ बाहर निकल गया। रसोई-घरकी हालत देखकर गनेशीको बड़ा गुस्सा आया। झुँझला उठी। पर करती क्या? बर्तन साफ करके फिरसे चूल्हा जलाया और खिचड़ी रख दी।

नौ बज जानेपर भी गोकुलप्रसाद नहीं आये। वे बाज़ारमें सभाके बीच 'स्त्रियोंके विषयमें पुरुषोंके विचार' पर व्याख्यान दे रहे थे। पुरुष होकर भी वे जाने कैसे और क्यों स्त्रियोंके पक्षमें मिल गये थे और उनकी ओरसे अपनी जातिके विरुद्ध वकालत कर रहे थे, जैसे स्त्रियोंकी हीन-दशाके सभी दृश्य उनकी ही आँखोंके आगेसे होकर निकले हों और उन्हें देखकर उनके हृदयमें भयानक आग धधक उठी हो। उन्होंने कहा—"कन्याके जन्मको ही लोग अशुभ समझते हैं। उसके पैदा होनेपर शोक मनाया जाता है। लड़का हो तो कुछ नाम करता। अरे भाइयो, नाम करनेवाले लड़कोंकी जननी यही लड़कियाँ ही होती हैं···।" और भी बहुत-सी बातें उन्होंने कहीं। लोगोंने वाह-वाह की। मित्रोंने बधाई दी।

घर लौटते-लौटते ग्यारह बज गये। गनेशी सो गयी थी। कई बार बुलानेपर भी जब उसने दरवाजा न खोला, तब गोकुलप्रसादने सन्धिमेंसे हाथ डालकर स्वयं जंजीर खोल डाली।

गनेशीको जगाया—उठो, जरा परस दो। जोरसे भूख लगी है।

गनेशी—कितने बजे हैं?

गोकुलप्रकाद—ग्यारह।

गनेशी—अब आये हो?

गोकुलप्रसाद—सभा हो रही थी। वहीं था। उठो तो, भूख लगी है।

गनेशी—जाकर परस खाओ।

गोकुलप्रसाद—उठो जरा। तुम तो......

गनेशी—परस लो भाई जाकर, हमको मत सताओ।

गोकुलप्रसाद—तुमने खा लिया?

गनेशी—भूख नहीं है।

गोकुलप्रसाद—सबेरे ही खाया था, अभीतक भूख नहीं लगी?

गनेशी खीझकर बोली—नहीं लगी, तुम जाते क्यों नहीं?

गोकुलप्रसाद भी कुछ बिगड़ उठे—तो तुम न उठोगी?

गनेशी—नहीं।

गोकुलप्रसादने चिल्लाकर कहा—न उठोगी?

गनेशी—नहीं।

"अच्छा!" कहकर गोकुलप्रसादने कपड़े उतार और बिस्तर-पर दूसरी पाटीपर करवट लेकर लेट रहे। मनका क्रोध दूधके उफानकी तरह बाहर निकला पड़ता था। जब न रोक सके तो गनेशीको एक लात मारकर कहा—उठ यहांसे। अपना अलग बिछाकर सो।

वह चुपचाप उठगयी। अपराध उसका ही था। मन-ही-मन

पछताने लगी, पर अभिमानके मारे कुछ बोली नहीं। उस सूने बिस्तरपर गोकुलप्रसादको अच्छा न लगा। कुछ देरतक पड़े-पड़े जब नींद न आयी तो उन्होंने उठकर फिर कपड़े पहने और जोरसे किवाड़ भड़भड़ाकर बाहर निकल गये। सोचा, कहाँ जाऊँ? नाटककी याद आ गयी। वहीं चले गये। तीन बजे घर लौटे। तबतक मन कुछ शान्त हो चुका था। लेटते ही नींद आ गयी। सबेरे साढ़े-नौ बजेतक सोते रहे। उठकर हाथ-मुँह धोनेके बाद ही गनेशीने आकर कहा—चलो, खा लो। बन गया है।

गोकुलप्रसादने एक हाथसे कमीज़के बटन लगाते हुए दूसरेसे खूँटीपरसे कोट उतारा। भारी गलेसे बोले—नही।

वे जाने लगे तो गनेशीने कोटका छोर पकड़ लिया। बोली—खाते जाओ।

गोकुलप्रसाद हाथ झटककर चले गये।

गनेशीने पीछेसे कहा—तुमको ऐसा ही करना था तो दद्दाके साथ हमे भेज क्यो न दिया?

गोकुलप्रसादने मुड़कर जोरसे कहा—अभी लिख दो चिट्ठी, आकर ले जायँ।

गनेशीने चिट्ठीके बदले तार दे दिया। दूसरे ही दिन उसके पिता आये और उसे लिवा ले गये।

४

पहले चार-छः दिन जबतक क्रोध बना रहा, तबतक तो गोकुलप्रसादको कुछ न मालूम पड़ा, पर बादमें अकेले रहना असह्य हो उठा। एक महीना बीतते-न-बीतते उन्होने पत्र लिखा—यहाँ रोटी-पानीकी बड़ी तकलीफ है, जल्दी भेजिये। वहांसे उत्तर

आया—आपके यहाँ थोड़े दिनोंमें बाल-बच्चा होनेवाला है। वहाँ कुछ ठीक प्रबन्ध न हो सकेगा। तबतक यहीं रहने दीजिये, बादमें भेज देंगे। और लिखा था कि यहाँका दशहरा बड़ा अच्छा होता है। चार दिनके लिये आप जरूर आवें।

वहाँ दशहरा करनेका प्रस्ताव गोकुलप्रसादको भी खूब जँचा। तीसरे दिन वे रवाना हो गये। इस बार ससुरालमें पहलेकी अपेक्षा उनका अधिक आदर-सत्कार हुआ। लड़केका बाप होनेवाले थे न ? सास-ससुरको नाती मिलना था, इसीसे। छोटी साली और उससे भी छोटा साला दिन-रातमें सैकड़ों बार 'जीजा-जीजा' करते आते थे और तरह-तरहकी मनोरंजक बातें करके गोकुलप्रसादका मन प्रसन्न करते थे। शामको जरा देरके लिये वे घूमने निकल जाते थे। बाकी दिन-रात घरमें ही बीतती थी।

सालीका नाम था गोमती। बारह-तेरह बरसकी थी। सालेका नाम गोपाल था। वह नौ-दस बरसका होगा। एक दिन गोमतीने कहा—जीजा, हमें क्या चीज़ दोगे ?

गोकुलप्रसादने मतलब नहीं समझा। पूछा क्यों ?

गोमती—लड़का खेलाओगे तब न कहोगे क्यों ? क्यों न छुट्टन ?

गोपाल सिर हिलाकर बोला—हूँ।

गोमती—बोलो, क्या दोगे ?

गोकुलप्रसाद—हम ग़रीब आदमी क्या दे सकते हैं ?

गोमती—अच्छा, बड़े ग़रीब आदमी ?

गोपाल—ग़रीब आदमी !

गोमती—हमको एक अच्छी-सी रेशमी साड़ी देना, बस।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

गोपाल—और हमको एक छोटी-सी घड़ी देना, जीजा। यहाँ रक्खेंगे। देखो, इस जेबमें।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

इसी तरहके मधुर वार्त्तालापमें मालूम ही नहीं पड़ता था कि समय कहाँ चला जाता है? बड़े मजेके साथ दशहरा और उसके बाद बारह-पन्द्रह दिन और निकल गये।

स्त्रीसे उनकी बहुत कम मुलाक़ात होती थी। इतने दिनोंमें ज़रा-ज़रा देरके लिए कुल तीन ही बार दोनो मिले। पहली बारकी मुलाक़ातमें गोकुलप्रसादने कहा—कहो, अच्छी तरह तो रहीं?

गनेशी—हाँ, तुम तो अच्छी तरह रहे?

गोकुलप्रसाद—अच्छी तरह। खड़ी क्यों हो? बैठो न।

गनेशी—अब जायँ, कोई देख लेगा।

गोकुलप्रसाद—देख लेगा तो क्या होगा? आओ बैठो।

गनेशी—नहीं, अब जायँ। फिर आएँगे।

गोकुलप्रसाद घर लौटे तो एकदम लड़केकी चिन्ता सिरपर सवार। कब होगा? पाँच महीने बीत चुके हैं। चार और बाक़ी हैं। पास-पड़ोसके और शहरके सब छोटे लड़के उनको सुन्दर जँचने लगे। सबके प्रति उनके हृदयमें प्रेम उत्पन्न हो गया। किसी चंचल लड़केको देखते तो मनमें कहते, कैसा उछलता-कूदता चलता है! मेरा लड़का भी ऐसा ही हो तो अच्छा। किसी बातूनी लड़केको देखकर कहते, कैसा अच्छा बोलता है? मेरा लड़का भी ऐसा ही निकले तो ठीक। नटखट लड़कोंको देखकर वह बहुत खुश होते, छोटे लड़के बदमाश होते ही हैं; पर

उनकी बदमाशीमें कितना रस भरा रहता है! किसीको गोदमें छोटा बच्चा लिए देखते तो जी ललचकर रह जाता। इसी तरह दिनपर दिन बीतने लगे।

नौ महीने बीत जानेपर एक-एक दिन गिन-गिनकर कटने लगे। रोज सवेरे और शामको गोकुलप्रसाद डाकियेकी राह देखते बैठे रहते—कहो, कुछ लाये हो? डाकिया कभी नाहीं कर देता और कभी कहता—हाँ बाबूजी, एक चिट्ठी है। बड़ी आतुरतासे गोकुलप्रसाद झपटकर पत्र लेते। कभी तो वह पत्र किसी मित्रका निकल जाता कभी ससुरालका भी होता तो उसमें सिर्फ राजी-खुशीकी बात लिखी रहती। अन्तमें वह पत्र भी आया, जिसकी इन्तजारी थी। लिखा था, फागुन बदी तेरसको आठ बजे रातको शुभ मुहूर्त्तमें कन्याका जन्म हुआ।

पत्र गोकुलप्रसादके हाथसे छूट गया। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। सिर चकराने लगा। संसार जैसे सूना हो गया। ऐसी दशा हो गयी, जैसे कोई विद्यार्थी कठिन परिश्रम करनेपर भी, पूरी आशा रहते हुए परीक्षामें फेल हो गया हो।
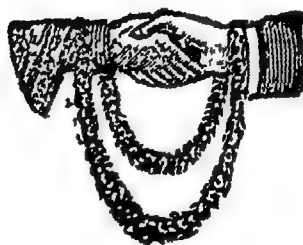
मिलन

श्रीमती कमलाकुमारी

सन्ध्याका समय है। आकाशमें कुछ-कुछ बादल छाये हुए हैं। रंगूनकी खाड़ीके किनारेका दृश्य तो हमेशा ही बड़ा सुहावना रहता है। जब कोई जहाज या स्टीमर आता है तो यात्रीगण यहाँ उतरते चढ़ते हैं। बहुतसे लोग अपने आत्मीयोंको घर ले जानेके लिये आते है और बहुतसे पहुँचाने। कोई हँसता हुआ लौटता है तो कोई रोता हुआ। इसी तरह यहाँ लगा ही रहता है। इस समय यहाँकी सुन्दरता और भी बढ़ गयी है। जितने जहाज और स्टीमर यहाँ ठहरे हैं सबमें रोशनी हो चुकी है, ऐसा मालूम होता है कि जलके ऊपर छोटे बड़े मकान बने हैं।

इस समय यहाँ प्रायः नित्य भीड़ लगी रहती है। आजकल अधिकतर कालेजके छात्र-छात्रियाँ घूमने आती हैं क्योंकि उनकी परीक्षा हो चुकी है। नित्यकी तरह आज भी जन-समुदाय एकत्रित था। वहीं एकान्तमें एक युवक और एक युवती बैठी है।

युवती ब्रह्मदेशवासिनी है और युवक हिन्दुस्तानी। युवतीकी आँखोंसे आँसू बह रहा था। युवक कुछ व्याकुल हो उठा। उसने कहा—माशीन, तुम दुखी क्यों हो रही हो, मैं शीघ्र ही मिलूँगा।

माशीन—तुम्हारी बात सत्य हो।

युवक—क्या तुमको इसमें कुछ सन्देह मालूम होता है?

माशीन—विजय, न मालूम क्यों मेरा हृदय बहुत दुखी हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे तुम मुझसे छिन जाओगे।

विजय—माशीन, तुम बड़ी पगली हो। मैं तुमसे कभी नहीं छिन सकता। तुम भले ही मुझसे अलग हो जाओ।

माशीन—विजय, जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक तुम्हारे सिवा मेरे हृदयपर और किसीका अधिकार नहीं हो सकता।

विजय पुलकित होकर बोला—मेरी माशीन, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी, मैं भी तुम्हें छोड़ किसीको अपनी हृदयेश्वरी नहीं बना सकता।

थोड़ी देरतक वहाँ निस्तब्धता रही। फिर विजयने कहा—माशीन, आज तुम घर जाओगी?

माशीन—हाँ, सब ठीक हो गया है।

विजय—मुझे पत्र लिखोगी न?

माशीन—जरूर लिखूँगी। विजय, अब तुम क्या काम करोगे?

विजय—होमियोपैथिक डाक्टर बनकर गरीबोंकी सेवा करूँगा। यही मैंने निश्चय किया है।

माशीन—यहीं रहोगे न?

विजय—हाँ।

थोड़ी देरतक दोनो वहीं घूमते रहे। फिर माशीन अपने पिताके साथ चली गयी और विजय अपने घर गया।

माशीन एक धनाढ्य व्यवसायी कोकोजीकी एकमात्र पुत्री है। कोकोजी वाकेमा नामक छोटेसे शहरमें रहते हैं। वहाँपर कालेज न होनेके कारण उन्हें अपनी पुत्रीको रंगून कालेज भेजना पड़ा। रंगून कालेजमें ही माशीन और विजयमें मित्रता हुई। वह मित्रता धीरे-धीरे प्रेममे परिवर्तित हो गयी। चार वर्ष दोनों साथ रहे। आज माशीन घर जा रही थी। फिर न जानें कब भेंट हो, इसी वियोगके दुःखसे युगल प्रेमी दुःखी थे।

विजयके माता-पिता बहुत दिनोंसे रंगूनमे रहते हैं। उन लोगोंकी वहाँ रईसोमें गणना है। वहाँ रहनेके कारण उनका आचार विचार बहुत बदल गया है। वहांके आर्यसमाजमें वे ही प्रमुख व्यक्ति हैं। उनका मेल-मिलाप पंजाबियोसे अधिक है। पंजाबियोंका साथ होनेके कारण उनलोगोंका कट्टरपन निकल गया है। विजयकुमारकी मातासे अगर कोई कहता कि आप अस्पृश्यताका विचार तनिक भी नही करती, तो वह उसे उत्तर देतीं कि सब ईश्वरके बच्चे है। अस्पृश्य मानकर मैं क्यों किसी-का दिल दुखाऊँ। अगर मेरा विजय किसी भंगीकी लड़की भी व्याह लावे तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

विजय जानता था कि मैं चाहे जिस लड़कीसे शादी करना चाहूँगा, मेरे माता-पिता बाधक नही होंगे। इसीसे उसने माशीनसे कहा था कि "मैं शीघ्र मिलूँगा।"

माशीन वाकेमासे विजयको लम्बे-लम्बे प्रेमपत्र लिखती।

विजय भी उसी तरह पत्रोंका उत्तर देता। दोनो प्रेम-सागरकी लहरोंमें डूबते उतराते।

(२)

सारा संसार निद्रादेवीकी गोदमें स्वप्नके घोड़े दौड़ा रहा था। ऐसा ही कोई दुखी रहा होगा जिसपर निद्रादेवीकी कृपा न हुई हो, जैसे हमारी माशीन। उसे नींद नहीं आ रही थी। वह पलँगपर पड़ी करवट बदल रही थी और धीरे-धीरे सिसकी भर रही थी। पड़ी पड़ी सिसकियाँ भर रही थी कि उसे कुछ याद आ गया। वह कुछ प्रसन्न हो गयी। फिर निद्रादेवीकी गोदमें वह भी पड़ गयी।

दूसरे दिन उसके माता-पिता दोनों एक निमन्त्रणमें जाने लगे। उन्होंने माशीनको भी चलनेके लिये कहा; परन्तु वह नहीं गयी। माता-पिता अपनी मोटर-बोटसे निमन्त्रणमें चले गये। इधर माशीनने एक किश्ती किराया करके रंगूनकी राह ली।

अभी रंगून कई मील दूर था। निशा देवी अपनी काली चादर चारो तरफ फैला चुकी थी। माशीन चली जा रही थी। रात होनेके कारण वह बड़ी भयभीत थी। उसने दूरसे देखा कि दो-तीन नावें चली आ रही हैं। वह प्रसन्न हुई कि अगर इसी तरह नावें आती जाती रहेंगी तो भय नहीं। जब तीनों नावें पास आ गयीं तो उनकी चाल धीमी हो गयी। तीनों नावोंने माशीनकी किश्तीको घेर लिया। अब माशीनकी किश्ती भी रुक गयी। माशीन भयभीत हुई। वह समझ न सकी कि ये कौन हैं। इतनेमें एक आदमी गरजकर बोला—जो कुछ तुम्हारे पास हो जल्दी दे दो नहीं तो गोली मारता हूँ। एक डाकू किश्तीपर

चढ़नेका प्रयत्न करने लगा। मलाहके हाथमें डाँड़ था ही। उसने एक हाथ ऐसा मारा कि वह डाकू घायल होकर गिर पड़ा। तब-तक मलाहको एक गोली लगी। वह मर गया। अब माशीन बड़ी घबरायी। दो तीन डाकू उसकी किश्तीपर चढ़ आये। उनमेंसे एक जो सबका सरदार मालूम होता था, बोला—जो कुछ हो सीधेसे दे दो नही तो तुम्हारी भी यही दशा होगी जो इसकी हुई। भयभीत माशीनने कहा—मेरे पास कुछ भी नहीं। उसपर लाठीका प्रहार होने लगा। सिर फट गया। वह बेहोश हो गयी। उसके पास जो कुछ था डाकुओंने ले लिया। एक कपड़ा उसपर डालकर वे चलते बने।

(३)

अरुणोदयका समय था। थोड़ी देरमें वृक्षोंपर एक सुनहरी रेखा खिंच गयी। उस समयका दृश्य बहुत ही सुहावना था परन्तु विजयके हृदयको वह भी प्रसन्न न कर सका। उसने सोचा शायद जल-विहार करनेसे कुछ मन प्रसन्न हो। वह नदीकी तरफ जा रहा था कि अखबार बेचनेवालेने आवाज लगायी—"नयी खबर" "नयी खबर"। उत्सुकतावश विजयने भी एक अखबार खरीदा। उसकी निजकी मोटर-बोट थी। उसीपर वह जाकर बैठा और मोटर-बोट चलानेकी आज्ञा दी। उसका हृदय चंचल हो रहा था। वह किसी तरफ न देखकर चुपचाप अखबार पढ़ने लगा। सहसा उसकी दृष्टि कोकोजीके विज्ञापनपर पड़ी। वह चौंक पड़ा। वह विज्ञापन इस प्रकार था—

मेरी लड़की माशीन आजसे लापता है। जो मेरी पुत्रीको

ला देगा उसके साथ अगर कन्या चाहेगी तो शादी करके भी हम उसे अपनी सारी सम्पत्ति दे देंगे।—अगर कन्या या वह शादी करना न चाहे तो हम अपनी आधी सम्पत्ति उसे दे देंगे।

—कोकोजी, वाकेमा।

यह विज्ञापन पढ़कर वह पागल-सा हो गया। मोटर-बोट अपनी चालसे चली जा रही थी। वह बैठा सोच रहा था कि माशीन इस तरह चुपचाप कहाँ चली गयी।

उसने देखा कि एक किश्ती बहती आ रही है। उसपर मलाह नहीं था। पास आनेपर उसने देखा कि किश्तीपर एक आदमी खूनसे लथपथ पड़ा है। किश्ती मोटर-बोटके बिलकुल पास आ गयी। विजयने उसे पकड़ा। नौकरसे उस आदमीको उठा लानेके लिये कहा। बेहोश व्यक्ति मोटर-बोटपर रख लिया गया। जब विजयने कपड़ा हटाया तो वह चीखकर बेहोश व्यक्तिपर गिर पड़ा। नौकर घबरा उठे। उनलोगोंने देखा कि एक सुन्दरी युवतीके हाथ पैर बड़ी निर्दयतासे बाँध दिये गये हैं, सिर फट गया है और उससे खून बहकर वहीं जम गया है। खून ज्यादा बहनेके कारण चेहरा पीला हो गया है। एक आदमी विजयकी सेवामें लगा और दूसरेने उस युवतीका बन्धन खोलकर उसे अच्छी तरह लिटा दिया। जब विजय होशमें आया तो वह रो पड़ा और अपने आप ही कहने लगा—हाय माशीन, किस दुष्टने तुम्हारी यह दशा की। मोटर-बोट लौटायी गयी।

(४)

अब माशीन धीरे-धीरे स्वस्थ हो रही थी। सिरका घाव

ब भी कुछ-कुछ था। विजयकी माता उसे बहुत प्यार करने
गी थी। माशीनके लिये उसके हृदयमें स्नेहका श्रोत वह रहा
जयके मिलनेसे माशीन बहुत प्रसन्न थी।

एक दिन बात करते-करते प्रेममें विह्वल होकर माशीनने
हा—विजय, मैं तुम्हारे प्रेममें पागल होकर घरसे चली आयी।
ह क्या मेरी भूल थी।

विजयने कहा—माशीन, ऐसा मत कहो। क्या तुम सम-
झती हो कि मेरे हृदयमें तुम्हारे प्रति प्रेम नहीं है ? अगर दिख-
ाने योग्य होता तो मैं हृदय चीरकर दिखला देता कि वहाँपर
ुम्हीं विराजमान हो।

खबर पाकर कोकोजी और उनकी स्त्री विजयके घर पहुँची।
जयने नम्रतापूर्वक माशीनके पानेका वृत्तान्त आदिसे अन्ततक
ह सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर कोकोजी भी रो पड़े और
जयको हृदयसे लगाकर बोले—बेटा विजय, तुमने मेरी पुत्रीके
ण बचाये हैं, इसलिये अब वह तुम्हारी हुई।